आहुतियाँ

[देश और जाति पर जीवन उत्सर्ग करने वाले
वीरों की कीर्ति-कहानियाँ]

लेखक—श्री गणेश पांडेय

प्रकाशक
छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला
दारागंज—प्रयाग

दिसम्बर १९२८ } { मू० ।।।)

भूमिका

वीरों के आख्यान इतिहास के उच्छ्वास हैं। वे सदा अमर रहते हैं। दलित राष्ट्रों के जीवन-नभ पर जब पराधीनता की कालरात्रि अट्टहास करती है तब इतिहास के ये उच्छ्वास—वीरों के ये संस्मरण—उन सुषुप्त राष्ट्रों को स्वप्नों के उद्यान में घसीट ले जाते हैं। वहाँ स्वाधीनता के हिंडोले में वे सब झूलने लगते हैं। कभी ऊपर जाते हैं, कभी नीचे, कभी सस्मित मन से मलयानिल के झोंकों में नाच उठते हैं और कभी पतन के भय से काँप उठते हैं। स्वाधीनता-स्वप्न के इन हिंडोलों में झूल झूलकर सुषुप्त राष्ट्रों की निद्रा भंग हो जाती है। जरा-जीर्ण शक्तियाँ यौवन धारण करती हैं और दलित राष्ट्र अभ्युत्थान के पथ पर अग्रसर होने लगते हैं।

यों तो वीरों के आख्यान स्वतः रोमाञ्चकारी होते हैं। उनकी घटनाओं का वर्णन कर देना उतना कठिन नहीं है। इतिहासों में वे सर्वत्र मिल सकती हैं। पर कथा-साहित्य में घटनाओं के शुष्क वर्णन का कोई स्थान नहीं है। कहानी पढ़ जाने पर यदि पाठक के हृदय पर उसका स्थायी प्रभाव न पड़ा, यदि काल की द्रुत गति में, उसके संस्मरण, विस्मृति-सागर की उत्ताल तरङ्गों से टकराकर वहीं समाप्त हो गये तो कहानी-लेखक का परिश्रम व्यर्थ गया। इसीलिए कहानी में जब तक कहानी-कला अपना कलहास नहीं मुखरित करती, तब तक लेखक कृतकार्य नहीं होता।

हर्ष की बात है कि कहानी-कला की दृष्टि से ये "आहुतियाँ" वास्तव में आहुतियाँ हैं। इनका "आहुतियाँ" नाम ही वीर रस के पाठक के हृदय में मोद-वल्लरी लहरा देता है! इसमें देशी और विदेशी—दोनों प्रकार की वीर गाथाएँ हैं। देशी कहानियों में आदर्श वीरता का चित्ताङ्कण है और विदेशी कहानियों में उद्दाम कर्तव्य-निष्ठा का। दोनों का मिश्रण करके लेखक ने अपनी इस कृति को और भी अधिक आकर्षक, उपयोगी और मनोहर बना दिया है।

मैंने इसकी जब पहली कहानी 'वीर डोवर्न' पढ़ी, तब यकायक मैं स्तम्भित रह गया। अकस्मात् हृत्सागर की कोई तरल तरङ्ग आकर मुझ से कह गयी—अगर मैं भी डोवर्न होता! यही कहानी की कला है। इस कहानी के ये अन्तिम शब्द तो कभी भूल ही नहीं सकते—

"किन्तु डोवर्न की परलोकगत आत्मा के प्रति वीर-सम्मान दिखाने के लिए, नेपोलियन की आज्ञा से, बहुत दिनों तक, उस ग्रिनेडियर दल के लोगो के अन्दर, एक सुन्दर रीति प्रचलित थी। ग्रिनेडियर दल के लोगों की जिस समय गणना की जाती थी, उस समय अन्यान्य सैनिको का नम्बर पुकारने के समय डोवर्न का भी नम्बर पुकारा जाता, और उसके उत्तर में उस दल का एक सब से वृद्ध और पुराना सिपाही कुछ पग आगे बढ़कर, सिर की टोपी उतारकर, भक्ति और आदर के साथ कहता—"वे यशःक्षेत्र में समाधिस्थ हो गये!"

इस प्रकार एक-दो नहीं, इसकी सभी कहानियाँ हृदय पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानों लेखक की भाषा वीररस के लिए ही निर्मित हुई हो। उसमें करुणा ओत प्रोत है, वीरता क्रीड़ा करती है, और मनोभावों की झाँकी पाठक को अपने साथ ले जाने के लिए विवशसी कर उठती है। भावों की दृष्टि से वीर डोवर्न, राखी-बन्धन, परिशोध, सहमरण, मातृ-भक्त आदि कहानियाँ लेखक की अमर कृतियाँ हैं। ऐसी सुन्दर कृति के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। लेखक मेरे मित्र हैं। इसीलिए इस पुस्तक पर ये दो शब्द लिखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एतदर्थ मैं उनका आभार मानता हूँ। मुझे आशा है कि लेखक की इस कृति को हिन्दी-साहित्य में आदर का स्थान मिलेगा। ईश्वर करे, वीरोपाख्यान-साहित्य में यह कृति सदा अग्रणी कहलाये।

साहित्य-मन्दिर
दारागंज, प्रयाग। } भगवतीप्रसाद वाजपेयी

दो शब्द

मैं कहानी लेखक नहीं हूँ, न तो कहानी-लेखक होने की मुझमें योग्यता ही है; और न साहस ही। फिर मैंने ये कहानियाँ कैसे लिखी हैं, इसे पाठकों पर प्रकट कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

आज एक वर्ष से अधिक समय हुआ, 'वीर डोवर्न' शीर्षक मेरी एक कहानी "महारथी" में प्रकाशित हुई थी। उसे अन्यान्य पत्रों ने उद्धृत किया, इसके सिवा मेरे कई मित्रों ने मुझे वैसीही कहानियाँ लिखने के लिये उत्साहित किया। इसके पहले एक कहानी 'सेवा' में भी प्रकाशित हो चुकी थी। हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् और कहानी-आलोचक ने मुझे सम्मति दी कि यदि ऐसी ही कहानियों का एक संग्रह तैयार हो तो वह एक नयी 'चीज़' होगी। अतः यह समझते हुए भी कि मैं इसके लिये सर्वथा अयोग्य हूँ, मैंने ऐसा करने का दुस्साहस किया। और इसी दुस्साहस का परिणाम यह पुस्तक है।

हाँ, इतना लिख देना मै आवश्यक समझता हूँ कि इस संग्रह की कुल कहानियाँ स्वतंत्र रूप से नहीं लिखी गई हैं। कुछ कहानियाँ अँगरेज़ी और कुछ बंगला कहानियों के आधार पर लिखी गई हैं। एक कहानी 'मराठी' से भी ली गई है। अन्तिम कहानी तो जगत्-प्रसिद्ध कहानी-लेखक गी दे

मोपाँसा की एक कहानी का अविकल अनुवाद है। अस्तु, इन कहानी-लेखकों का मैं आभारी हूँ। पं० रामचन्द्र भावे बी० ए० ने भी इस कार्य में मुझे सहायता पहुँचाई है, अतः मैं इनका भी कृतज्ञ हूँ।

अन्त में हिन्दी के ख्यातनामा कहानी-लेखक पं० भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी के प्रति कृतज्ञता प्रकट न करना अन्याय होगा, क्योंकि आपने सभी कहानियाँ एक बार आद्यन्त पढ़ जाने की कृपा की है, और भाषा सम्बन्धी बहुत कुछ त्रुटियाँ दूर कर दी हैं। इसके अतिरिक्त आपने इसकी भूमिका भी लिख दी है।

यदि पाठकों ने इसे अपनाया तो मैं ऐसी ही कहानिया के और भी संग्रह भविष्य में तैयार कर सकूँगा।

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज-प्रयाग। } गणेश पांडेय

सूची

आहुतियाँ

(१) वीर डोवर्न

नेपोलियन बोनापार्ट का नाम किसने न सुना होगा। इन्होंने अपने बाहुबल से अनेक देशों को जीत करके अन्त में, किस प्रकार फ्रान्स के राज्य-सिंहासन को प्राप्त किया, इसे भी बहुतेरे जानते होंगे। जहाँ इन में और गुण थे, वहाँ एक यह भी गुण था कि वे अपने अधीनस्थ सैनिकों के अन्दर वीरता का भाव भर सकते थे। इसके दृष्टान्त स्वरूप लाटुर डोवर्न नामक एक सैनिक की वीरता की कहानी लिखी जाती है। लाटुर डोवर्न नेपोलियन के अधीन एक साधारण ग्रिनेडियर* सैनिक

---

*जिस प्रकार भिन्न भिन्न तोपों और बन्दूकों के भिन्न भिन्न नाम होते हैं और कोई 'स्टेम' कोई 'मैक्सिमगन' कोई 'मजार राइफिल' कही जाती है, वैसे ही भिन्न भिन्न प्रकार के गोले गोलियों के नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे किसी का नाम 'डे लाइट', किसी का नाम 'मिति', किसी का नाम 'दम दम' होता है। ग्रिनेड भी ऐसा ही एक प्रकार का गोला है। नेपोलियन का जो सैनिक दल युद्ध के समय, इस गोले को काम में लाता था, वही उस समय 'ग्रिनेडियर' के नाम से प्रख्यात था। इनके अतिरिक्त ग्रिनेड गोले को और कोई व्यवहार में नहीं ला सकता था।

का काम करता था। यह आज से बहुत पहले की बात है।

डोवर्न लड़कपन ही से बहुत साहसी था। इसी से उसके माता-पिता ने उसके लिये युद्ध-विद्या का प्रबन्ध कर दिया था। वह अपने अध्यवसाय और बुद्धि के बल से थोड़े ही समय मे अपनी शिक्षा समाप्त करके सैनिक का काम करने लगा। लोग पहले उसे उतना पहचानते न थे, किन्तु तीक्ष्ण दृष्टिवाले नेपोलियन, थोड़े ही समय मे, डोवर्न को पहचान गये। इसी से उसकी पदोन्नत्ति होने में अधिक समय न लगा। किन्तु डोवर्न पदोन्नति नही चाहता था वह कहा करता "मैं ग्रिनेडियर हूँ, मैं ग्रिनेडियर रहकर ही मातृभूमि की सेवा करूंगा।" नेपोलियन ने उसकी प्रार्थना मान ली। डोवर्न ग्रिनेडियर दल का अधिनायक बनाया गया। किन्तु जिस समय भिन्न भिन्न ग्रिनेडियर दल एकत्रित होकर मिल गये, उस समय डोवर्न ने देखा, कि उसकी आज्ञा के अधीन आठ हजार ग्रिनेडियर सैनिक बिना मीन-मेख किये मरने मारने को तैयार हैं और डोवर्न ही उनका अध्यक्ष है। इतनी भारी सेना का भार लेनेपर भी वह कप्तान ही रहा, और कोई उच्च पद नहीं ग्रहण किया। फ्रांस का प्रधान 'ग्रिनेडियर" नाम से वह सर्वत्र प्रख्यात हो गया।

डोवर्न की अवस्था जिस समय ४० वर्ष की हुई उस समय वह कुछ दिनों की छुट्टी लेकर एक बार अपने एक मित्र के साथ

साक्षात् करने गया था। किन्तु मित्र के घर में विश्राम के लिए जानेपर भी डोवर्न एक चतुर सैनिक की तरह उस स्थान की देखभाल करने लगा। शायद किसी दिन इस देश में भी युद्ध करने की नौबत आ जाय। भाग्यवशात् उसकी इस अयाचित अभिज्ञता ने भी उसे समय पर बड़ा काम दिया था।

उस समय आस्ट्रिया के साथ फ्रांस का युद्ध हो रहा था। लाटुर डोवर्न ने सुना कि वह जिस स्थान पर अवस्थान किये हुए हैं, उसी के पास एक छोटे से पहाड़ी क़िले को दख़ल करने के लिए एक आस्ट्रियन सेनादल, बड़े वेग से सब बाधाओं को पार करते हुए बढ़ता आ रहा है। यह एक बहुत मामूली किला था, उसे एक छावनी कहने में भी कोई हर्ज नहीं। किंतु विशेष घटना के कारण वह छोटी छावनी भी ऐसे मौके पर थी कि उसके हाथ से निकल जाने पर फ्रांस की बहुत भारी क्षति होने की सम्भावना थी। आस्ट्रियन सेना के इस गुप्त आक्रमण की बात को नेपोलियन नहीं जानता था। इसी से सदा की भांति उस दुर्ग की रक्षा के लिये केवल ३० सैनिक वहाँ निवास करते थे। डोवर्न ने निश्चय किया कि इस दुर्ग में जाकर ख़बर दे दूँ। क्योंकि कुछ ही घंटों की देरी होने से आस्ट्रियन सेना उस पहाड़ी क़िले के द्वार पर पहुँच जायगी। यह सोचकर वह प्राणपण से रास्ता तै करने लगा।

उस समय संध्या हो चली थी। पहाड़ी के अगल बगल से

अस्तगामी लोहित सूर्य की म्लान रश्मियाँ बीच बीच मे दिखाई पड़ती थीं। ठीक इसी समय पसीने से तर, थका-मॉदा डोवर्न क़िले के दरवाज़े पर जा पहुँचा, वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि दरवाजा खुला पड़ा है। जिनके हाथो मे किले की रक्षा का भार था, वे सभी भाग गये हैं। उस स्तब्ध, निर्जन, परित्यक्त पहाड़ी क़िले की चोटी पर फ्रांस की जातीय पताका मानो अस्तगामी सूर्य की ओर निहार कर, उड़ती हुई रोकर कह रही थी "आज तुम डूब रहे हो, तुम्हारे साथ मैं डूबनेवाली हूँ।"

डोवर्न का वीर हृदय कांप उठा।

किन्तु और समय नहीं था। एक एक मुहूर्त के साथ मानो उसके जीवन का एक एक वर्ष बीता जा रहा था। दृढ़-प्रतिज्ञ डोवर्न ने उस शून्य दुर्ग के भीतर प्रवेश करके उसका दरवाज़ा बन्द कर लिया। उसने सोचा, चाहे जिस तरह से हो, अन्ततः २४ घंटे तक इस दुर्ग की रक्षा करनी ही होगी।

डोवर्न ने जीवन की बाज़ी लगा दी।

दुर्ग में प्रवेश करके उसने देखा कि केवल ३० बन्दूकें और कुछ गोले गोलियां हैं। डोवर्न को उस समय मरने की भी फ़ुर्सत न थी। दुर्ग के द्वार को और भी दृढ़ करने के लिये, जहां जो कुछ मिला उसे ही ले आकर वह द्वार के सामने रखने लगा। उसके बाद उन ३० बन्दूकों को भरकर किले की दीवारो के छिद्रों के

मुंह में एक एक करके रखने लगा और फिर बाकी बची हुई, बारूद को अपने हाथ के पास लाकर रक्खा।

इतने में डोवर्न एक बार हँसा। वह हँसी मरण-भय-रहित वीरकी हँसी थी!

किले के भीतर खाने-पीने की काफी सामग्री थी। श्रान्त डोवर्न भूख से बहुत व्याकुल हो रहा था। वह क्षण भर की भी देर न करके चटपट खाने को बैठ गया।

कौन कह सकता है कि यही उसके जीवन का अन्तिम भोजन नहीं है!

संध्या व्यतीत हो जाने पर अब रात्रि हो आई है। चारो तरफ घना अंधेरा छाया हुआ है और उसी अन्धकार पूर्ण छोटे से किले में अकेला डोवर्न है। भय किसे कहते हैं इसे वह जानता तक नहीं। उस समय तक आस्ट्रियन सेना नहीं पहुँची है। डोवर्न को अब और विलम्ब होना सहन नहीं हो रहा है। कुछ दूर पर कोई साधारण सा शब्द होने पर भी वह यही समझता है कि सेना आ रही है। इस तरह बहुत समय बीत गया। उस समय भी शत्रु के आने का कोई चिन्ह न देख कर डोवर्न ने सोचा कि सम्भव है कि उन लोगों ने इधर आने का इरादा छोड़ दिया हो।

थोड़ी देर मे एक प्रकार का शब्द सुनाई पड़ा। डोवर्न के शिक्षित सावधान कानों ने समझ लिया कि दूरके पर्वत के ऊपर

घोड़ों के खुर का शब्द हो रहा है। वह और समय नष्ट न करके अपनी सांस रोककर मेज़ के ऊपर कान देकर लेट गया। इस बार कुछ भी सन्देह न रहा। डोवर्न को अच्छी तरह से सुनाई पड़ रहा था कि वह शब्द क्रमशः धीरे धीरे निकटतर आ रहा है।

क्रमशः वह आस्ट्रियन सेना के किले के पास की पहाड़ी के सामने आ पहुँची।

डोवर्न ने चटपट अपनी सब बन्दूकों को एक बार अच्छी तरह परीक्षा करके देखा।

इसके बाद उस शान्त आकाश, निस्तब्ध अन्धकार से समाच्छन्न पार्वत्य प्रदेश, उस क्षुद्र पहाड़ी किले को कम्पित करता हुआ दनादन शब्द हुआ, वह भीषण आवाज बहुत दूर तक फैली हुई पहाड़ी मे गूंजती रही। दूसरे शिखर से भी कम्पित करती हुई डोवर्न की बन्दूक फिर गरज उठी।

कुछ देर के बाद सभी दृश्य निस्तब्ध हो गया।

आस्ट्रियन सेना के नायक ने समझ लिया कि हमारी सेना के आने का हाल दुर्गवासियो को मालूम हो गया। उन्होने जितनी आसानी से क़िले को अधिकार मे कर लेने का विचार किया था, वह न हुआ। पर्वत के उस उन्नत दुर्लंघ्य, अभेद्य प्राचीर को भेदन करने की शक्ति उनकी तोपे तथा बन्दूको मे न थी। इसपर रास्ता भी इतना तंग था कि दो आदमी से अधिक एक साथ नही प्रवेश कर सकते थे। इस कारण उस रात को लड़ाई बन्द

रहा। आस्ट्रियनो ने कुछ पीछे हटकर उस रात को आराम किया।

दूसरे दिन सवेरे शत्रु पक्ष से एक आदमी शान्ति की सफेद पताका उड़ाता हुआ उस किले के पास आकर बोला "हम लोगो के पास तुम्हारी सेना से बहुत अधिक सिपाही हैं। तुम लोग पराजय स्वीकार कर आत्म-समर्पण करो। व्यर्थ क्यो प्राण गँवाते हो।

. इस बात का उत्तर देने के लिये एक ग्रिनेडियर क़िले के बाहर आकर बोला—"तुम अपने कर्नल के पास जाकर कहो, हम लोग अन्तिम घड़ी तक इस क़िले और गिरि-संकट की रक्षा करेगे। नेपोलियन के सिपाही आत्म-समर्पण किसे कहते हैं, यह जानते तक नहीं।"

फिर क़िले का फाटक बन्द होगया। युद्ध आरम्भ हुआ। विपक्षी दल ने एक बड़ी भारी तोप लाकर पर्वत के उस रन्ध्र के मुँहपर स्थापित कर दी। किन्तु क़िले के ऊपर गोला बरसाने के लिये तोप किले के ठीक सामने स्थापित करनी पड़ी। अभी तोप यथा-स्थान लगायी भी नहीं गयी थी कि इतने में किले से गोली का बरसना आरम्भ हो गया। आस्ट्रियन गोलन्दाज उस आघात को सह न सका। तोप को हटा कर अन्यत्र ले गया। तोपसे काम चलता न देखकर आस्ट्रियन सेनानायक ने कहा—"बन्दूक छोड़ो। बन्दूक की सहायता से पैदल ही दुर्गपर आक्रमण करो।"

आस्ट्रियन सेना भीम नाद करती हुई उस तंग गिरि-संकट के मुख में प्रवेश करने के लिये अग्रसर हुई। फिर गोली की वर्षा होने लगी। मानो वह छोटा प्राणहीन पहाड़ी क़िला ही, फ्रांस देश की गौरव रक्षा के लिये, मूर्तिमान होकर हजारों हाथों से गोली बरसाने लगा। भला, किसमें इतनी सामर्थ्य है जो उस गोली-वर्षण के सम्मुख ठहर सके! विपक्षी दल को पीछे हटना पड़ा।

फिर निस्तब्धता छा गयी।

इस प्रकार तीन वार चेष्टा करने पर भी आस्ट्रियन सेनानायक उस गिरि-संकट के भीतर प्रवेश न कर सका। सुतरां किले पर अधिकार न हो सका। उधर उसने अपनी सेनापर दृष्टि डाली तो देखा कि उसकी तरफ़ के ५० अधिक सिपाही खेत रहे।

उस निष्फल दिन के वाद धीरे धीरे सन्ध्या आयी। फिर सारा पर्वत अन्धकाराछन्न हो गया। तब तक के लिये युद्ध विग्रह बन्द हो गया।

डोवर्न ने किस प्रकार उस भीषण रात को बिताया, इसका वर्णन करना कठिन है; किन्तु उसने देखा, कि २४ घण्टे वीत गये। इस समय इस क़िले को छोड़ देने से भी किसी विपत्ति की आशंका नहीं। उस रात को प्रायः बारह बजे के समय फिर शत्रु की ओर से एक दूत ने आकर आत्म-समर्पण करने का प्रस्ताव किया। इसपर डोवर्न बोला, हम लोगों को इसमें कुछ

आपत्ति नहीं। यदि तुम लोग यह अंगीकार करो कि इस किले में जो अस्त्रादि हैं, उन्हें लेकर हम लोग बिना किसी बाधा के फरासीसी शिविर को लौट जायं तो कल प्रातःकाल ही, हम लोग किला छोड़ देने को तैयार हैं।"

कर्नल साहब ने यह बात मान ली।

दूसरे दिन बिल्कुल तड़के उस गिरि-संकट के भीतर आस्ट्रियन सेना पहुंची। दुर्ग का वह बड़ा फाटक फिर खोला गया। इसके बाद सबने विस्मित होकर देखा कि केवल एक वृद्ध ग्रिनेडियर बन्दूकों का एक गट्ठर सिर पर लिये, बहुत कष्ट के साथ धीरे धीरे शत्रु सेना के बीच से होकर अग्रसर हो रहा है!

अत्यन्त आश्चर्य-चकित होकर कर्नल साहब बोले, "सैनिक, तुम्हारे और साथी कहाँ गये?" वह वीर सैनिक-गर्व के साथ बोला—

"कर्नल साहब, मैं किले में अकेला ही था।"

"क्या तुम अकेले थे? तुमने अकेले ही इस दुर्ग की रक्षा की है?"

वीर डोवर्न ने विनीत भाव मे उत्तर दिया,—"जी हाँ, मै अकेला ही था?"

"सैनिक, तुमने क्या देखकर ऐसे दुस्साहस के काम मे हाथ डाला था?" बन्दूक के भार से निपीड़ित मस्तक को उन्नत करके वह वृद्ध ग्रिनेडियर बोला—

"और कुछ नहीं, केवल फ्रांस के गौरव को संकटापन्न देखा था।"

सब लोग विस्मय-पूर्वक डोवर्न के मुँह की ओर ताकने लगे। कर्नल वीरता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए शीघ्र ही अपने सिर पर की टोपी उतार कर बोले—"ग्रिनेडियर, मैं तुम्हें सलाम करता हूँ। तुम वीर ही नहीं, वीरों मे शिरोमणि हो।"

कर्नल इतना कहकर ही नही रह गया। उसने अपने आदमियों के द्वारा सभी बन्दूकों को फ्रेंच-कैम्प मे पहुंचवा दिया और सहस्रों मुँह से डोवर्न की प्रशंसा करते हुए फ्रेञ्च-सेनाध्यक्ष के पास पत्र भी लिखा।

जिस समय इस अमानुषिक वीरता की अद्भुत कहानी नेपोलियन के कानो में पहुंची, उस समय वह डोवर्न को और भी उच्च पद देने के लिये उससे वारम्बार अनुरोध करने लगा। किन्तु डोवर्न बोला—"मै एक बिल्कुल साधारण ग्रिनेडियर हूँ। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। मैं ग्रिनेडियर भर रहूँगा।"

इसके बाद कुछ दिन और बीते। एक वार एक भीषण युद्ध मे डोवर्न की मृत्यु हो गई। फ्रान्स एक अमूल्य रत्न से हाथ धो बैठा।

किन्तु, डोवर्न की परलोकगत आत्मा के प्रति वीर-सम्मान दिखाने के लिये, नेपोलियन की आज्ञा से बहुत दिनों तक उस ग्रिनेडियर दल के लोगो के अन्दर एक सुन्दर रीति प्रचलित थी।

ग्रिनेडियर दल के लोगों की जिस समय गणना की जाती थी; उस समय अन्यान्य सैनिकों का नम्बर पुकारने के समय डोवर्न का भी नम्बर पुकारा जाता ; और उसके उत्तर में उस दल का एक सबसे वृद्ध और पुराना सिपाही कुछ पग आगे बढ़कर, सिर की टोपी उतारकर भक्ति और आदर के साथ कहता—

"वह यशःक्षेत्र में समाधिस्थ हो गये ।"

---

(२) पितृभक्त वीर बालक

हमारे यहाँ इतिहास लिखने की बहुत कम प्रथा रही है। इसीसे हमें अपने पूर्वजो की कीर्त्ति-कथा जानने के लिये अन्य उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। कुछ विवरण शिला लेखों से मिलते हैं, तो कुछ संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थो से। मुसलमानो में इतिहास लिखने की प्रथा बहुत दिनों से चली आती है। इसी कारण जब से वे भारतवर्ष मे आये, उस समय से भारतवर्ष के इतिहास की शृङ्खलाबद्ध सामग्री मिलती है। परन्तु मुसलमान इतिहास लेखकों ने बहुधा हिन्दुओ की कीर्ति-कथा पर कालिमा पोतने की चेष्टा की है और उनके उज्ज्वल चरित्र को कम अङ्कित किया है। इसी प्रकार अँगरेजी इतिहास में हिन्दुओं और मुसलमानो दोनों के चरित्रों को बिगाड़ने की कोशिश की गई है। जिससे, अतीत काल सागर में छिपे हुए अगणित रत्नो की गणना करना असम्भव प्रायः हो गया है।

आज हम जिस घटना का उल्लेख कर रहे हैं वह सामान्य होने पर भी हिन्दुओं की जातीयता का प्रवल प्रमाण है। एक नववर्षीय वालक का चारो ओर से धधकती हुई युद्ध की भयानक आग के वीच अद्भुत वीरता प्रदर्शित करना, क्या हमारे जातीय भाव का एक ज्वलन्त उदाहरण नहीं है? अन्यान्य जातियो के लिये उपेक्षणीय होने पर भी हमारे लिये वह गौरव की वस्तु है। यहाँ पर संक्षेप मे वह घटना लिखी जाती है।

उस समय मुर्शिदावाद के नवाव सरफराज़ खां थे। उनके व्यवहारों मे सभी असन्तुष्ट थे। उनमें लोगों को आकर्षित करने की शक्ति न थी जिसमे उनके विरुद्ध एक वड़े भारी षड्यन्त्र की रचना हुई। षड्यन्त्रकारियो के नेता अली वर्दी खाँ थे। वे वड़े जोवट के मनुष्य थे। उनकी कार्यतत्परता, कष्ट-सहिष्णुता, और वीरता सव को आकर्षित कर लेती थी। उस समय सरफराज खां पटने से वापस आरहे थे। इधर अलीवर्दी ख़ाँ अगवानी करने के स्थान पर एक वड़ी सेना लेकर मुर्शिदावाद से चल पड़े। यह भारी सेना देखकर सरफ़राज़ खाँ की आँखे खुलीं। किन्तु अव लोहा लेने के सिवा दूसरा उपाय ही न था। दोनों सेनाओ ने गिरिया के प्रसिद्ध मैदान में शिविर डाल दिये। वीच मे कल कल निनादिनी, प्रसन्न सलिला भागीरथी प्रवाहित हो रही थीं। दोनो ओर खेमे पड़े हुए थे। इन शिविरों की धवल छवि भागीरथी के वक्ष में प्रतिविम्वित होकर अद्भुत छटा दिखा रही थी।

निशा का अवसान हुआ। उषा की विमल छटा से चारों ओर प्रकाश छा गया। सारे विश्व में सजीवता का प्रवाह बह निकला। पक्षियो के मधुर गान से योद्धाओं की हृत्तन्त्री बज उठी। सूर्य देव के दिखाई देने के पहले ही युद्ध के जुझाऊ वाजे वज उठे। वीर लोग मैदान में आ डटे। घोर युद्ध आरम्भ हो गया। सरफराज खां भी हाथी पर चढ़ कर युद्ध मे अग्रसर होने लगे। इनके प्रधान सेनापति युद्ध में काम आ चुके थे। ऐसी अवस्था में वीरता दिखाते हुए समर-सागर में कूद पड़े। इतने ही मे एक गोली आकर उनके मस्तक मे प्रवेश कर गई। सहसा समर क्षेत्र मे वह वीर गति को प्राप्त हुए। मुर्शिदावाद के नवावों मे केवल सरफराज ने ही युद्ध में प्राण दिये थे।

विजयसिह नामक एक राजपूत योद्धा के हाथ मे सेना के पिछले भाग की रक्षा का भार था। वह गिरिया के पास खमरा नामक स्थान में शिविर डाले हुए था। जब उसे ज्ञात हुआ कि नवाब के अधिकांश सेनापति एक एक करके गिरिया के भीपरण युद्ध मे धराशायी हुए और मेरे स्वामी भी गोली खाकर सदा के लिये चल वसे, तब वह एक क्षण की भी देरी न कर थोड़े से घुड़ सवारो को लेकर अलीवर्दी की ओर वढ़ा। स्वामी की मृत्यु से राजपूत वीर का खून खौलने लगा। उसने एक बड़ा भारी भाला लेकर अलीवर्दी को लक्ष्य करके चलाया। अलीवर्दी के सारे

शरीर में मानो बिजली दौड़ गई। परन्तु सौभाग्य से गोलन्दाज-सैन्याध्यक्ष की एक गोली लगने से राजपूत वीर विजयसिंह गिरिया के युद्ध में काम आया।

विजयसिंह का एक नव वर्ष का पुत्र था। उसका नाम जालिम सिंह था। वह छाया की भाँति पिता का अनुसरण किया करता था। जिस समय विजयसिंह खमरा से गिरिया के समर-क्षेत्र में उपस्थित हुए, उस समय बालक जालिम भी पिता के साथ समर-सागर की उत्ताल तरंगों में कूद पड़ा। जब विजयसिंह घोड़े की पीठ से गिर कर धराशायी हुए, तब बालक जालिम नंगी तलवार लेकर पिता की मृत देह की रक्षा के लिये गया। चारों ओर से अलीवर्दी की सेना जय जयकार कर रही थी। रण-वाद्य की ध्वनि से दिग्मण्डल प्रति ध्वनित हो रहा था, परन्तु इस नव वर्षीय बालक ने भौंहें टेढ़ी न की, वह अपनी छोटी सी तलवार ले सिंह-शावक की भाँति गर्जन करने लगा। पिता की देह को मुसलमान छू न ले, इस आशंका से वह अपने तुच्छ प्राणों की परवा न करके भीषण समर-क्षेत्र मे निर्भीक हो कर खड़ा था। क्रमश. चारो ओर से सेना ने आकर उस बालक को घेर लया। बालक इतने पर भी विचलित न हुआ। वह अपनी छोटी सी तलवार को अपने चारों ओर चलाने लगा। ज्यों ज्यों सेना उसकी ओर बढ़ने लगी, बालक का उत्साह भी बढ़ने लगा। जिस राजपूत जाति ने संसार के इतिहास मे अभूतपूर्व वीरता दिखाई है, उसका

सामान्य रक्त-विन्दु भी सजीव है, इसे कौन स्वीकार न करेगा ?

अलीवर्दी खाँ स्वयं ही घटना-स्थल पर उपस्थित थे। वालक के अद्भुत साहस तथा पितृ-भक्ति से चमत्कृत हो उन्होंने सैनिको को विजयसिंह की मृत देह का यथोचित संस्कार करने का आदेश दिया। अलीवर्दी के कतिपय सैनिक वालक की अभूत पूर्व वीरता से प्रसन्न होकर उसे अपने कन्धे पर उठाकर ले चले। वालक ने भागीरथी के तट पर यथारीति संस्कार कर पितृदेव की पवित्र भस्मराशि को भागीरथी में ही डाल दिया। पवित्रसलिला भागीरथी उस पवित्र भस्म राशि को अपने वक्ष में धारणकर कलकल नाद करती हुई वहती रही। वालक खिन्नमना हो शिविर को वापस आया और पितृ-वियोग से कातर हो अनिश्चित भविष्यत्-समुद्र मे कूद पड़ा। एक नव वर्ष के वालक की ऐसी वीरता, साहस तथा अपूर्व पितृ-भक्ति संसार के इतिहास मे ढूँढ़ने पर कम मिल सकेगी। मुर्शिदावाद के इतिहास में गिरिया का युद्ध एक प्रधान घटना है। राजपूत वालक जालिमसिंह की अद्भुत कथा ने इस घटना को और भी चिरस्मरणीय वना दिया है।

हिन्दुओं के समान पितृ-भक्ति अन्य जातियो में कम पाई जाती है। जो "पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परमं तपः पितरि प्रीतिमापन्नं प्रीयन्ते सर्वे देवताः" इस महावाक्य का पद-पद पर

पालन करते आ रहे है, उसके सामने संसार भर को नत-मस्तक होना पड़ेगा, इसमें सन्देह नही। बड़े दु:ख की बात है कि इतिहास लिखते समय हम लोग ऐसी ज्वलन्त आदर्श-पूर्ण कथाओ का उल्लेख करना बहुधा भूल जाते हैं। पाश्चात्य जगत में ऐसे दृष्टान्तो पर न जाने कितनी पुस्तकें और कितनी कवितायें लिखी जाती हैं, किन्तु हम लोग इन्हे विस्मृति के गर्त में छोड़ते जा रहे हैं। भारतवर्ष के निवासियो की कौन कहे, बंगालियों मे भी थोड़े लोग ऐसे निकलेगे, जो इस नव वर्षीय बालक की अपूर्व वीरता और पितृ-भक्ति से अवगत होगे। जिस स्थान पर उस बालक ने वीरता दिखाई थी, वह आज भी जालिमसिह का मठ कहलाता है। किन्तु इस विवरण को बहुत कम लोग जानते हैं।

---

(३) वीर हिरोशे।

घनी अँधेरी रात्रि है। आस-पास की चीजो को कौन कहे, अपना हाथ तक नही दिखाई पड़ रहा है। नीचे अथाह समुद्र है, ऊपर अनन्त आकाश, और बीच में धुँधला कुहरा छाया हुआ है। रात्रि के बीतने पर प्रभात का आगमन होने वाला है। परन्तु कौन जानता है कि दिन के आगमन के साथ ही किसी की मृत्यु भी निकट आ रही है।

मृत्यु की उपेक्षा करके, समुद्र की ऊँची तरंग-मालाओ का

परिहास करते हुए, चार जहाज़ पोर्ट-आर्थर की ओर जा रहे है। मृत्यु की चिन्ता किसी भी वीर-हृदय को विचलित नहीं करती। ऐसे भयङ्कर विपत्ति-काल में आत्मीय लोगो की चिन्तायें भी उनको नहीं सताती। हाँ, चिन्ता है तो केवल उस वात की कि किस प्रकार यह वड़ा कार्य, जिसके लिये इतने लोग अपने प्राणो को हथेली पर लिये हुए प्रस्तुत है, सिद्ध हो सकता है। इसी चिन्ता से वे व्याकुल हो रहे हैं।

अभीष्ट स्थान पर पहुंचने के कुछ देर पहले ही, दाहनी ओर वाईं ओर से रूसी जहाजो की ओर किनारे पर के क़िले की तोप और वन्दूक के गोले उन चारो जहाज़ों पर आ आ कर वर्षा की वूंदो की भाँति गिरने लगे। किले की सर्चलाइट की रोशनी से जापानियों की आँखें चौंधियाने लगी। तो भी वे आगे वढ़ने से वाज न आये। गोले वारी तथा जलमग्न नौका के घात-प्रतिघात से वे जरा भी विचलित नहीं हुए। धीरे धीरे गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर होते ही गये।

ये जहाज़ ज्यों ही वन्दर के पास पहुँचे, त्योंही रूसियों की एक जलमग्न नौका ने फुकुई मारू नामक जहाज़ के भीतर छेद कर डाला। इस जहाज़ के नायक थे टकिओ हिरोशे। कुछ ही सेकंड के वाद जहाज डूवने लगा। हिरोशे अपने अधीनस्थ लोगों को साथ लेकर एक छोटी सी नाव पर चढ़ गये। लेकिन

नाव पर आजाने के वाद उन्हें मालुम हुआ कि उनका 'सुगिनों' नामक साथी जहाज पर ही छूट गया है।

उधर जहाज क्षण-क्षण मे डूवता जा रहा था। सोचने विचारने का भी अवसर न था। तो क्या वह सुगिनों को छोड़ कर ही लौट जाय? बन्धुहीन, सहायहीन, घायल सहचर को उस भयावनी रात में अकेले छोड़ कर नाव पर चला जाय? नहीं, हिरोशे प्रकृत-वीर था, अपने सहचरो के लिये प्राणों की वाजी लगानेवाला मर्द था, वह हृदय-हीन स्वार्थी न था। अस्तु, उस डूबते हुए जहाज मे चढ़ कर वह फिर सुगिनों को ढूंढने के लिये चला। उस समय जहाज धूयें से परिपूर्ण था; डेक पर समुद्र की उन्मादिनी लहरें आकर टकराने लगी थीं। गोले भी गर्ज्जन करते हुए जहाज पर पहले की तरह आ आ कर गिर रहे थे।

किन्तु वीर हृदय न डिगा। उसने एक वार, दो वार, तीन वार उस डूबते जहाज में जा जा कर तलाश किया, किन्तु कृतकार्य न हुआ। तीसरी वार विफल-मनोरथ हो ज्यो ही उसने अपनी नौका मे पैर रखा, कि इतने में आकाश और समुद्र को प्रतिध्वनि करता हुआ वज्रनिनाद हुआ।

हू, हू, करके निशाकालकी शीतल वायु वह रही थी; मानो वह स्वदेशभक्त हिरोशे की मृत्यु से क्षुब्ध और स्तम्भित हो करुणा-गीत गा रही थी! क्षण-क्षण में वन्दूक और तोप के गोले गरजते हुए रात की निस्तब्धता को भङ्ग कर रहे थे।

अन्धकार से दिशायें उस समय भी आक्रान्त थीं। हिरोशे के साथी उस समय नौका को खेये जा रहे थे, किन्तु हिरोशे कहाँ है? निर्दयी तोप के गोले ने उसके शरीर को टुकड़े टुकड़े कर समुद्र-जल में फेंक दिया था, केवल चिन्ह-स्वरूप मांस का एक टुकड़ा उस नाव पर पड़ा हुआ था। सम्भव है कि उसके शरीर के टुकड़े किसी जन-शून्य तट पर लग कर लहरों के थपेड़े खाते हों !!

हिरोशे की नश्वर देह नाश को प्राप्त हुई, किन्तु उसका अद्भुत साहस और आदर्श त्याग जापान के इतिहास को चिरकाल तक गौरवान्वित रखेगा, इसमें सन्देह नहीं।*

---

* रूस, और जापान के बीच में युद्ध आरम्भ होने के कुछ ही समय बाद जापानी कमांडर-इन-चीफ ने पोर्ट आर्थर बन्दरगाह का प्रवेश-द्वार कुछ जहाज़ों को डुबा कर बन्द करने की चेष्टा की। रूस के जितने जहाज बन्दरगाह में थे उनके बाहर जाने का रास्ता रोक कर समुद्र पर एकाधिपत्य जमाना ही उनका उद्देश्य था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह काम कितना कठिन था। सैकड़ों योद्धा ऐसे भयानक कार्य के लिये जाने को प्रस्तुत थे। एक ने तो अपने रक्त से आवेदन-पत्र लिखा था। तीन चार इस प्रकार चेष्टा की गई। वीरवर हिरोशे ने पहली बार अपने अपूर्व साहस का परिचय दिया, किन्तु दूसरी बार की चेष्टा में वह अपने प्राणों से हाथ धो बैठा। यह घटना सन् १९०४ ई० की २७ वीं मार्च को रात के साढ़े तीन बजे घटी थी।

(४) राखी-वन्धन

[१]

सायंकाल का समय है। सूर्य्यदेव दिन भर संसार को तपा कर पश्चिमाचल में अपना मुँह छिपाने वाले हैं। दिन भर की गर्मी से अधीर हो लोग वाहर, मैदान तथा उपवनोंमे वायु-सेवन के लिये निकल पड़े हैं। यहाँ तक कि अन्त:पुरवासिनी रानियाँ भी राज वाटिका मे वायुसेवन के लिये आई हैं। चित्तौर के राजोद्यान में दो स्त्रियाँ वातचीत कर रही हैं। उनमें एक प्रौढ़ा है। दूसरी अभी प्रौढ़ावस्था के निकट पहुंची है। दोनो के चेहरो मे चिन्ता तथा अधीरता का भाव टपक रहा है। पहली स्त्री व्यग्रता-पूर्ण स्वर में वोली—

"वहन, क्या तुमने कुछ सोच रखा है कि हम लोगों के लिये अन कौन सा उपाय है ?"

"कुछ स्थिर नहीं कर सकी हूँ ! भगवान एक लिंग क्या करेंगे, यह कौन कह सकता है ?"

सुना है, इस वार वहादुरशाह ने चित्तौर को विल्कुल खाक मे मिला देने की प्रतिज्ञा की है।"

"मुजफ्फरशाह के वन्दी होनेका अपमान उसके चित्त को सदा कोचा करता है। इसी से वह वहुत दिनो से उसका वदला लेने की फिक्र मे है।"

"विक्रमाजीत से सर्दार लोग जिस प्रकार असन्तुष्ट हैं, उससे

तो यह बात सन्देहास्पद है, कि वे लोग इनका साथ देंगे। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि वे विक्रमाजीत से इतने नाराज क्यों हैं? सभी कहते हैं कि हम लोग मानो पप्पाबाई के राज में वास कर रहे हैं।"

"सर्दार लोग विक्रमाजीत का ख्याल भले ही न करें, किन्तु वे चित्तौर की रक्षा करने से मुख न मोड़ेंगे। और विक्रमाजीत का राज्य क्या सचमुच उस अत्याचारिणी पप्पाबाई का राज्य हो गया है?"

"क्या जाने, वे तो यही कहते हैं। न जाने किस समय में पप्पा बाई ने क्या किया था, कि उसके साथ विक्रम की तुलना की जाती है। किन्तु सरदार गण विक्रमाजीत से जिस प्रकार नाराज हैं, उससे यह तो आशा नहीं होती कि वे चित्तौर की रक्षा के लिये प्रयत्न करेंगे?"

"बहन, तुम बिल्कुल भोली-भाली हो। मेवाड़-वासियों के लिये चित्तौर कितने आदर की वस्तु है, इसे, जान पड़ता है, तुम नहीं जानती हो। चित्तौर उन्हें प्राणों से भी प्यारा है। चित्तौर के राणा से असन्तुष्ट होने पर भी वे मन ही मन चित्तौर की पूजा करते हैं।"

"यह होने पर भी मेवाड़ में कौन ऐसा है जो गुजरात के बादशाह बहादुर के सामने ठहर सके।"

"बहन, ऐसा क्यों कहती हो? यह मेवाड़ यद्यपि इस

समय श्मशान हो गया है, तो भी तुम देखना कि इस भस्म राशि से, आवश्यकता पड़ने पर किस प्रकार आग जल उठेगी।"

"बहन, ऐसा हो सकता है, किन्तु मैं कुछ स्थिर कर नहीं पाती।"

"क्या तुम इतना डर गई हो?"

"छिः बहन! यह कह कर मेरे मन को कष्ट न पहुंचाओ। राजपूत स्त्रियाँ क्या मरने से कभी डरती हैं?"

"तब तुम इतना सोच-विचार क्यों करती हो? भगवान एक-लिंग के मन में जो है, वही होगा।"

"क्या मै अपने लिये सोचती हूँ? विक्रम और उदय के लिये क़ौनसा उपाय किया जाय, इसी चिन्ता से मैं अधीर हो रही हूँ।"

"हाँ, यह तुम्हारा सोचना तो ठीक है। दोनों पुत्रों के लिये ही तो चिन्ता है। फिर भी राजपूतो के लड़के अपने लिये स्वयं सोचते हैं। क्या वे लड़कपन से तलवार पकड़ना नहीं सीखते?"

"सो ठीक है, किन्तु बप्पाराव का वंश तुम एकदम से लोप ही करना चाहती हो?"

"तुम ने ठीक कहा, यह बात तो मेरे ध्यान ही में न आई थी। हम लोगो पर चाहे जो कुछ बीते, किन्तु बप्पाराव का वंश तो हम लोगो को रखना ही पड़ेगा!"

"चित्तौर की रक्षा का उपाय हुए बिना इन बच्चो की रक्षा

किस प्रकार हो सकेगी ? विक्रम वीर तो है, किन्तु गुजरात के सुल्तान की सेना के सामने भला वह क्या कर सकेगा ?"

"यह बात तो ठीक है, किन्तु इस के लिये उपाय क्या है ?"

"अच्छा बहन, एक उपाय करने से क्या काम नहीं चल सकता ?"

"कौनसा उपाय ?"

"हुमायूँ बादशाह से चित्तौर रक्षा के लिये अनुरोध करने से क्या काम नहीं हो सकता ?"

यह सुन कर दूसरी स्त्री हँस पड़ी। पहली स्त्री पुनः बोली—

"बहन, एक-बारगी, हँसी ही में उड़ा दिया क्या ?"

"तुम्हारी यह बात सुन कर भला किसे हँसी न आवेगी ? जिसका पिता स्वर्गीय महाराणा का परम शत्रु था, उसी से तुम चित्तौर-रक्षा के लिये अनुरोध करना चाहती हो ?"

"सुनो बहन, मेरी बात एकदम हँसी मे न उड़ा दो। मैंने सुना है, कि बाबर स्वर्गीय महाराणा के शत्रु होने पर भी राजपूतो की प्रशंसा करते नहीं अघाता था। हुमायूँ बादशाह भी हम लोगो की प्रशंसा करते होगे।"

"मुसलमानों की प्रशंसा पर क्या तुम विश्वास करती हो ?"

"मैंने सुना है मुग़ल वैसे मुसलमान नहीं हैं। वे हिन्दुओ के साथ सद्भाव रखना चाहते हैं।"

"तुम ने यह अजीव वात कहाँ सुनी ?"

"नहीं वहन, यह विलकुल ठीक वात है। मुग़ल वड़े ही शान्त प्रकृति के होते हैं, वे हिन्दुओं से मेल रखने के वड़े इच्छुक हैं। चित्तौर की रानी के अनुरोध की वह कभी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे।"

"तुम किस तरह से अनुरोध करोगी ?"

"मैं वादशाह के पास राखी भेजना चाहती हूँ। जिस पवित्र राखी-वन्धन से राजपूतानियाँ राजपूतों को भाई कहती हैं, मैं उसी वन्धन से मुगल वादशाह को वाँधूँगी।"

"जो हो, तुम्हारे साहस की वलिहारी है। परन्तु क्या मुगल एक राजपूतनी की राखी लेंगे ?"

"मुझे तो विश्वास है कि अवश्य लेंगे। हुमायूँ वादशाह जिस प्रकृति का मनुष्य है, उस से मुझे विश्वास है कि वह चित्तौर की रानी को धर्म-वहन कहने से कभी कुण्ठित न होंगे।"

"यदि तुम्हे इस पर पूर्ण विश्वास हो तो और विलम्ब न करो, शीघ्र ही वादशाह के पास राखी भेजो।"

"किन्तु मेरा विचार है कि पहले वादशाह के पास आदमी भेज कर उनके मन का भाव जान लेना ठीक होगा। वाद में मौका पड़ने पर राखी भी भेजी जायगी। क्योंकि कहीं उन्होंने राखी लौटा दी तो अपमान का अन्त न होगा।"

उपर्युक्त वातचीत से, पाठकों को यह वात अच्छी तरह ज्ञात

हो गई होगी कि यह किस समय की घटना है। दोनों स्त्रियाँ मेवाड़-सिंह राणा संग्रामसिंह की सहधर्मिणी हैं। पहली का नाम कर्णवती, दूसरी का जवाहिर वाई है। राणा संग्रामसिंह उस समय इस दुनिया मे न थे। दोनों रानियों से दो पुत्र थे। एक का नाम विक्रमाजीत, दूसरे का नाम उदयसिंह था। मालवा के बादशाहों से मेवाड़ वालों की सदा से शत्रुता चली आती थी। मौका पाने पर एक दूसरे से बदला लेने की चेष्टा किया करते थे। जब तक राणा साँगा जीवित रहे, तब तक उनकी दाल न गली। उनकी मृत्यु के बाद विक्रमाजीत गद्दी पर बैठे, । किन्तु ये थोड़े ही दिनों में सब के अप्रिय-पात्र बन बैठे। गुजरात के बादशाह बहादुरशाह से मेवाड़ की परिस्थिति छिपी न रही। वह चित्तौर पर आक्रमण करने के लिये खूब तैयारी करने लगा। मेवाड़ के लोगों को भी उसकी तैयारी की सूचना मिल गई। वे अत्यन्त शंकित हुए। विशेष कर रानी कर्णवती अपने छोटे बच्चे उदयसिंह के लिये अत्यन्त चिन्तित हुई। दोनों रानियों मे जो बातें हुईं, वह ऊपर दी जा चुकी हैं।

रानी कर्णवती ने निश्चयानुसार कुल-पुरोहित को बुला कर अपना अभिप्राय सुनाया। पुरोहित ने बादशाह के पास पत्र ले जाना स्वीकार किया। रानी ने पुरोहित से यह भी कहा कि यथा-समय बादशाह के पास राखी भी भेजी जायगी। पुरोहित ने शुभ मुहूर्त मे आगरे के लिये प्रस्थान किया।

[२]

हुमायूँ बादशाह आगरे में निवास कर रहे हैं। इस समय शत्रुओं के मारे इनका भी नाको-दम है। कही अफगानिस्तान में विद्रोह खड़ा हुआ है, तो बंगाल-विहार में शेरशाह ने बगावत का झण्डा बुलन्द कर रखा है। जिस समय रानी कर्णवती ने हुमायूँ के पास पुरोहित को भेजा, उस समय वे बंगाल की ओर जाने की तैयारी कर रहे थे। बादशाह दरबार में बैठे थे। इतने में द्वारपाल ने बादशाह को ब्राह्मण के आने की सूचना दी। जब बादशाह ने यह सुना कि चित्तौर के राणा का कुल-पुरोहित किसी विशेष काम से मेरे पास आया है तो उसे शीघ्र ही दरबार मे लाने के लिये आदेश दिया। पुरोहित रानी का पत्र लेकर दरबार मे पहुंचे और कोर्निश बजाकर बादशाह के सामने खड़े होगये। बादशाह ने उन्हे बैठने लिये आदेश देकर पूछा—

"आप किस लिये आये हैं।"

पुरोहित ने पत्र देकर कहा कि मेरे आने का प्रयोजन इसी पत्र से ज्ञात होगा।

बादशाह ने पत्र पढ़ा। तब पुरोहित ने कहा, "इसके अतिरिक्त यदि आप चाहे तो मै भी कुछ बतला सकता हूँ।"

"अच्छा, आप यह तो बतलाइये, सुलतान बहादुरशाह क्या चित्तौर पर आक्रमण करने के लिये रवाना हो चुके हैं?"

"रवाना होने के लिये तैयार हो चुके हैं। सुना है, शीघ्र ही रवाना होंगे।"

"मैं यथा साध्य रानी के अनुरोध को रखने की चेष्टा करूंगा।"

"बादशाह की बात से मैं सन्तुष्ट हुआ। अब मुझे विश्वास हुआ कि चित्तौर की रक्षा होगी और संग्रामसिंह का वंश लोप न होने पावेगा।"

"राणा साँगा की अद्भुत वीरता पर मैं इतना मुग्ध हूँ कि मैं यथाशक्ति उनके वंश की रक्षा करने की चेष्टा करूँगा। आप रानी पर मेरा अभिप्राय प्रकट कर दीजियेगा।

"बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"रानी ने लिखा है, मौक़ा पड़ने पर राखी भेजूँगी। आप यह बताइये, 'राखी' किसे कहते हैं?"

"हमारे राजपूताने की यह एक प्रथा है कि राजपूतानियाँ किसी के साथ धर्म्म-भाई का सम्बंध स्थापित करना चाहती हैं तो राखी वलय का सूत्र भेजती हैं। विशेष कर किसी विपत्ति में पड़ने पर वे राखी भेजती हैं।"

"राखी-बन्धन द्वारा क्या भाई-बहन का सम्बंध स्थापित हो जाता है?"

"हाँ, जहाँपनाह! जिसके पास राखी भेजी जाती है, वह प्राणपन से उसकी मर्य्यादा रखने का प्रयत्न करता है।"

"मुगल बादशाह भी इसमें त्रुटि न करेंगे। आप महाराणी से जाकर कहे कि मैं आदरपूर्वक उनकी राखी को ग्रहण करूँगा। मै बंगाल की ओर जा रहा था, किन्तु उनके अनुरोध को रखने के लिये अभी सारी सेना को चित्तौर की ओर बढ़ने के लिये आदेश देता हूँ।"

"बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य है," कह कर पुरोहित वहाँ से विदा हुए और चित्तौर को चल पड़े।

[३]

बहादुरशाह प्रतिहिंसा की आग हृदय मे प्रज्वलित कर चित्तौर को खाक मे मिलाने के लिये बड़ी भारी सेना लेकर अग्रसर होने लगा। उसकी अश्वारोही तथा पैदल सेना का पारावार नहीं है। इसके अतिरिक्त गोलन्दाज़ सैनिक भी हैं। लाब्री खां नामक एक फिरंगी उनका अफसर है।

राणा विक्रमाजीत सिंह उस समय बून्दी राज्य के अन्तर्गत लैच नामक नगर मे उपस्थित थे। बहादुरशाह की सेना पहले वहीं पर दिखाई पड़ी। विक्रमाजीत भी पीछे पैर रखने वाले मर्द न थे। वह अपने मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर उस विशाल सेना से भिड़ पड़े। उनके अधीनस्थ सर्दार गण उनकी रक्षा करने की अपेक्षा चित्तौर की ही रक्षा करना उचित समझ कर उसकी ओर बढ़े। बहादुरशाह की प्रबल पराक्रान्त सेना के सम्मुख विक्रमाजीत न ठहर सके। जयोन्मत्त बहादुरशाह अपनी विजयिनी सेना को लेकर अन्त मे वीर दर्प से चित्तौर की ओर दौड़ पड़ा।

आज चित्तौर का सर्वनाश उपस्थित है। किन्तु राजपूतो को उसकी गौरव रक्षा के लिये इतनी चिन्ता है कि राणा के पराजित होने पर भी उसकी रक्षा के लिये दल के दल राजपूत आकर वहां उपस्थित होने लगे। देवल के बाघ जी, बून्दी के राजकुमार, रानी कर्णवती के भाई अर्जुन राव, दुर्गा राव आदि राजपूत वीर गण चित्तौर के लिये अपने प्राणो की बाजी लगाने के लिये चले। सुल्तान की भयावनी सेना की उपेक्षा करके उन लोगो ने युद्ध की घोषणा की। राजपूतों की तुरही के बजते ही बहादुर शाह की सेना से गोले छूटने लगे। मुट्ठी भर राजपूतों के अदम्य साहस के सामने सुलतान की जबर्दस्त सेना तुच्छ जान पड़ती थी। वज्रवत गोले को सहन करते हुए भी राजपूतो ने धैर्य न छोड़ा। उनके साहस के सामने फिरंगियो के गोले भी व्यर्थ जान पड़ने लगे।

जब लाखीखां ने देखा कि गोले से भी राजपूत विचलित होने वाले नही हैं तो उन्होंने बीकागिरि के नीचे सुरंग खोद कर उसमें बारूद भर कर उसमें आग लगा दी। थोड़ी ही देर में घोर गर्जन के साथ चित्तौर के किले का एक अंश भग्न हो गया। उसके साथ ही हाड़ावीर अर्ज्जुनराव पाँच सौ सैनिकों के साथ धराशायी हुआ। उस रन्ध्रपथ से बहादुरशाह की सेना दुर्ग में प्रवेश करने की चेष्टा करने लगी। किन्तु इतने पर भी राजपूतों ने पीछे पैर न हटाया। वे रन्ध्रपथ पर बहादुरशाह की सेना

का गतिरोध करने लगे। राजपूत वीर दुर्गाराव, सत्यू और दूद्दू नामक सर्दार असीम वीरता दिखा कर धराशायी हुए। इतने में बहादुरशाह की सेना से जय-ध्वनि उठी। क्रमशः वे प्रवल वेग से दुर्ग में प्रवेश करने की चेष्टा करने लगे। राजपूत वीर भी प्राण-पण से बाधा देने की चेष्टा करने लगे। जो चित्तौर को प्राणों से बढ़कर चाहते हैं, उसकी रक्षा के लिये हँसते हँसते प्राण त्यागना उनके लिये कौन बड़ी बात है। क्रमशः वीर राजपूत एक एक करके जीवन विसर्जित करने लगे। अन्त में सब लोगों ने समझ लिया कि इस बार चित्तौर की रक्षा न होगी।

राजमाता जवाहिर बाई और कर्णवती के पास जब यह खबर पहुँची तो वे विचलित हो उठीं।

कर्णवती ने जवाहिर बाई से कहा—"बहन, चित्तौर की रक्षा तो न हुई।"

"हा! भगवान एकलिंग को यही मन्जूर था।"

"विक्रमाजीत और उदय की रक्षा का अब उपाय क्या है?"

"अब तुम अधिक विलम्ब न करो, बादशाह के पास राखी भेज दो।"

"राखी पाकर क्या बादशाह पहुँच सकेंगे?"

"असंभव नहीं है। पुरोहित जी ने आगरे से आकर क्या कहा था।"

"उन्होंने तो यह कहा था कि बादशाह मेरे ही साथ रवाना

हुए हैं। किन्तु उनके यहाँ आने तक चित्तौर की रक्षा कौन करेगा ?"

"इसके लिये तुम चिन्ता न करो। भगवान एकलिंग इसका उपाय करेंगे।"

जिस समय वे इस प्रकार वातचीत कर रही थीं, उसी समय यह खवर पहुंची कि दुर्गाराव, सत्तू और दद्दू ने रन्ध्र पथ पर जीवन विसर्जित कर दिया। यह सुनते ही जवाहिर वाई ने तत्काल ही वह स्थान छोड़ दिया। रानी कर्णवती अकेली बैठ कर चिन्ता सागर में गोते लगाने लगी। कुछ देर के वाद जवाहिर वाई अस्त्र-शस्त्र और ज़िरह-बख्तर से लैस होकर वहाँ पहुँचीं कर्णवती को सम्बोधन करके वोली, "वहन, भगवान् एक लिंग ने इस वार चित्तौर रक्षा का भार मुझे दिया है। मैं चलती हूँ।"

"मुझे अकेली छोड़कर कहाँ जाओगी वहन ?

"तुम उदय और विक्रम को देखो, अब मै अधिक देर तक नही ठहर सकती हूँ। चित्तौर के लिये मेरे प्राण व्याकुल हो उठे हैं।"

"वहन, यदि शत्रु ने क़िले में प्रवेश किया तो क्या करूँगी ?"

"राजपूतों के चिर-आराध्य जौहर व्रत का अनुष्ठान करना।"

यह कहकर वीर नारी जवाहिर बाई वहाँ से चलकर फ़ुर्ती से उस रन्ध्र पथ के पास पहुँची। राज-माता को देख कर राजपूत

सरदार और सैनिक दुगुने उत्साह से मतवाले हो उठे। वे पुनः नवीन उत्साह से शत्रु की सेना की गति को रोकने लगे। किन्तु लात्री खाँ की तोपों के गोले के सामने भला वे कब तक ठहरते? जवाहिर बाई सब लोगों को उत्साहित करती हुई प्रबल पराक्रम से बहुत देर तक युद्ध करती रहीं। किन्तु फिरंगियों के गोलों से वह धाराशायी हुईं। वीर नारी ने चित्तौर रक्षा के लिये हँसते-हँसते प्राण दिये। शेष राजपूत इसके बाद प्राण-पण से युद्ध करने लगे।

जवाहिर बाई के आत्म-विसर्जन की बात रानी कर्णावती के पास पहुँची तो वह शोक और संताप से अस्थिर हो गईं। अन्त में उन्होंने पुरोहित को पुनः बुला भेजा। पुरोहित के आने पर उन्होंने कहा, "पुरोहित जी, आप बादशाह के पास पुन. जाकर हम लोगों की दुर्दशा की बात सुनायें। और मेरी इस राखी को बादशाह को दें। राखी पाकर मुझे आशा है, बादशाह शीघ्र ही यहाँ पहुँचेंगे।"

"आपकी राखी पाकर वह क्षण भर की भी देरी न करेंगे। जान पड़ता है, अब तक वह चित्तौर ही के आसपास ठहरे हुए हैं।"

'आप और विलम्ब न करें' कह कर रानी ने अपना हीरे से जड़ा हुआ सोने का कंकण राखी के रूप में पुरोहित को दिया। पुरोहित उसे लेकर शीघ्र चल पड़े।

आगरे से चलकर हुमायूँ अपनी सेना लेकर फुर्ती से चित्तौर की ओर अग्रसर हो रहे थे। मेवाड़ की सीमा के पास पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि सुल्तान वहादुरशाह ने चित्तौर पर आक्रमण किया है। उस समय उन्होंने अपने सैनिकों को चित्तौर की ओर अग्रसर होने के लिये आदेश दिया। रानी कर्णवती के पत्र के अनुसार वादशाह ने यह सोचा कि अभी तक उन पर घोर विपत्ति नहीं आई है। क्योंकि अभी तक रानी ने राखी नहीं भेजी। वादशाह का हुक्म पाकर मुग़ल सेना द्रुतगति से चित्तौर की ओर चलने लगी और शीघ्र ही चित्तौर के निकट पहुँच गई।

जिस समय मुग़ल सेना मेवाड़ की सीमा के पास विश्राम लेने के लिये शिविर डाल कर पड़ी हुई थी, उसी समय राणा के पुरोहित वहाँ पहुँचे। वह वादशाह के शिविर में बुलाये गये। उन्होंने वादशाह को कोर्निश वजाकर कहा—

"जहाँपनाह, चित्तौर का सर्वनाश उपस्थित है।"

"क्या सुल्तान किले में प्रवेश कर चुका ?"

"अव प्रवेश कर चुका होगा।"

"जान पड़ता है, आपने उसे किले में प्रवेश करते नहीं देखा है।"

"नहीं जहाँपनाह, उसकी क्या मजाल कि वह यों ही क़िले में समा जाय, तो भी चित्तौर में रह ही कौन गया है, जो उसकी

जाति को रोक सके ? सभी लोग एक एक करके बलिदान हो चुके हैं !"

"क्या राणा जीवित नहीं हैं ?"

"भगवान् एक लिंग की कृपा से वह अब भी जीवित हैं। तो भी वह कहाँ हैं, इसे कोई नहीं जानता।"

"तो चित्तौर की अब तक किसने रक्षा की है।"

"राजपूत सर्दारों और राजमाता जवाहिर बाई ने।" लेकिन प्राय: सभी वीर काम आ चुके हैं। यहाँ तक कि राजमाता भी लड़ते लड़ते काम आ चुकी हैं।"

"रानी कर्णवती और उदयसिंह का क्या समाचार है ?"

"मैं उन्हें जीता देख कर आया हूँ। रानी ने पूर्व कथन के अनुसार राखी भेजी है।"

यह कह कर पुरोहित ने उस स्वर्णवलय को बादशाह के हाथ में दिया।

बादशाह ने उसे हाथ में धारण कर लिया और पुरोहित से कहा, "आप शीघ्र ही चित्तौर को जायँ। मैं अभी सैनिको को लेकर चित्तौर पहुंचता हूँ।"

"बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य" कह कर पुरोहित फुर्ती से चला। बादशाह जल्दी ही अपनी सेना के साथ चित्तौर की ओर लपके। रानी कर्णवती की रक्षा के लिये उनका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। वह उस राखी बन्धन को कर्त्तव्य का बन्धन

समझ कर और अधिक स्थिर न रह सके। इस प्रकार मुग़ल बादशाह राजपूत महिला के राखी बन्धन से बद्ध होकर विपत्ति को मोल लेने मे कुंठित न हुए।

राजमाता के प्राण विसर्जन करने पर सुल्तान की सेना के वेग को राजपूत सहन न कर सके। एक एक कर के सभी धराशायी होने लगे। जब चित्तौर की रक्षा का कोई उपाय न रह गया तो सभी बचे हुए सर्दारो ने मंत्रणा की और यह स्थिर किया कि राजवंश के किसी व्यक्ति के बलिदान के बिना चित्तौर की रक्षा न होगी। किन्तु राजवंश में से कौन आत्म-विसर्ज्जन करे? संग्रामसिंह के छोटे पुत्र उदयसिंह बिल्कुल बच्चे थे, इनके बलिदान से कोई लाभ न होगा। विक्रमाजीत का कहीं पता ही नहीं लगता था। उस समय देवल के बाघ जी बोले—"मैं भी शिशोदिया वंश का हूँ, मेरे शरीर मे भी वप्पाराव का रक्त है। मैं ही बलिदान होऊँगा।" सभी लोगों ने उनसे सहमत होकर उन्हें राजवेश से भूपित किया। उनके मस्तक पर वप्पाराव का राजछत्र रखा गया। चितौर के राज-सिंहासन पर बैठ कर बाघ जी ने मन ही मन भगवान एकलिंग को स्मरण किया। इसके बाद वह उसी वेश में सुल्तान की सेना की ओर बढ़े। राजपूत गण पुनः दुगुने उत्साह से शत्रु सेना की गति रोकने लगे—किन्तु केवल क्षण भर के लिये। देखते देखते उनके भीपण आक्रमण से बाघ जी धराशायी हुए। इतने में मालवे की सेना से जय ध्वनि उठी। उन लोगों ने बाकी

बचे हुए राजपूतां को ठेल कर दुर्ग में प्रवेश करना आरम्भ किया।

रानी कर्णावती ने सब सुना। सर्दार लोग उनके पास जाकर बोले, "माता, दुर्ग की रक्षा तो न हुई, अब राजपूतानियों के कर्त्तव्य का पालन कीजिये।"

आप लोग चिता सजाना आरंभ कीजिये। मैं भी तब तक सज्जित होती हूँ। हाय राखी, तुझे इतना विलम्ब करके क्यों भेजा। बादशाह तो पहुंचे ही नहीं।"

"यदि राखी ही भेजी तो देरी क्यो की?"

"जो भगवान एकलिंग के मन मे था, वही हुआ। वे हमारा बलिदान चाहते हैं, मैं उनके चरणों मे अपने जीवन की बलि दूंगी। अच्छा उदयसिंह के लिये आप लोगो ने क्या उपाय किया है?"

"उनके लिये आप चिन्ता न करें। बूंदी के वीर शूरतान राव ने उनका भार ग्रहण किया है।"

"तो मैं निश्चिन्त होकर आत्म-बलि दूंगी। आप लोग जौहर व्रत की तैयारी कीजिये, मैं सज्जित होती हूँ।"

राजपूत लोग चिता सजाने लगे। बात की बात में लकड़ी लाकर एक बड़ी चिता सजा दी गई। आज इसी जलती हुई चिता में राजपूतों की बहनें, मातायें और सहधर्मिणियाँ आत्म-विसर्जन करेंगी।

उधर जो रन्ध्र-पथ की ओर युद्ध कर रहे थे, उसके पास खबर पहुंची कि जौहर व्रत की सारी तैयारी हो गई, तब उन मुट्ठी भर राजपूतों ने एक बार फिर प्रबल वेग से सुल्तान की सेना पर आक्रमण किया। एक एक करके वे भी पृथ्वी की गोदी में सो गये। उधर चिता भी तैयार हो गई।

जब चिता प्रज्वलित होकर उससे शिखा निकलने लगी उस समय राजपूत रमणियाँ सज्जित होकर उसके पास पहुँचीं। रानी कर्णवती के पास तेरह हज़ार राजपूत ललनायें इकट्ठी हो गईं। इतने में खबर आई कि सुल्तान किले में प्रवेश कर इधर ही को लपका आ रहा है। तब रानी भगवान एकलिंग का नाम लेकर जलती हुई चिता में कूद पड़ीं। उनके साथ ही १३ हज़ार राजपूतानियाँ कूद पड़ीं। धू धू करके अग्निशिखा जल उठी। देखते देखते चित्तौर की ललनायें भस्म राशि में परिणत हो गईं।

[६]

चित्तौर जीत कर बहादुरशाह आमोद प्रमोद में दिन बिता रहा था, इतने में खबर आई कि हुमायूं बादशाह चित्तौर के पास पहुँच गये। बादशाह का पत्र लेकर दूत किले में पहुंचा। बादशाह ने पत्र मे सुल्तान को शीघ्र ही किला छोड़ने के लिये लिखा था। तदनुसार सुल्तान ने किला छोड़कर अपने देश की ओर यात्रा की। बादशाह किले में पहुंचकर राणी कर्णवती तथा १३ हज़ार राजपूतनियों के आत्मबलिदान की कथा सुनकर

स्तम्भित होकर रह गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—"हाय बहन, राखी पहले क्यों न भेजी ?"

---

(५) परिशोध

उन दोनो को एक साथ देखने पर लोग आश्चर्य से भर जाते। आश्चर्य होने की बात भी थी। "जूयन बलिष्ठ, सुन्दर मुखड़े का दर्शनीय पुरुष और वीरता की प्रतिमूर्ति था—और 'जूलस' दुबले पतले शरीर का, भद्दा और कुबड़ा था। उसे देखते ही छोटे बच्चे डर के मारे माँ की गोद में मुंह छिपा लेते। बड़े लोग 'राम राम' कहने लग जाते। 'जूलस' देखने में इतना बुरा तथा भयंकर जान पड़ता था कि लोग उसे भगवान की सृष्टि का जीव ही नहीं समझते थे। सभी लोग जानते थे कि उसका जन्मदाता शैतान है। किन्तु फिर भी कोई 'जूलस' को 'जूयन' का संग छोड़ कर अकेले नहीं देख पाता था। वे दोनों, विरुद्ध गुण वाले मनुष्य क्योंकर ऐसे दृढ़ बन्धन में बद्ध हुए थे इसको जानने के लिये सभी लोगों को कुतूहल होगा।

'जूयन' स्पेन देश के प्रधान नगर 'शेविल' का एक प्रसिद्ध योद्धा था। उसका नाम सब की ज़बान पर रहता था। सभी उसकी प्रशंसा करते और उससे स्नेह रखते थे।

उस समय 'स्पेन' देश में बड़े बड़े साँड़ों के साथ युद्ध करना एक आमोद समझा जाता था। जो ऐसे युद्ध में भाग लेते थे उन्हें 'माटाडोर' कहते थे। 'जूयन' 'शेविल' नगर का सर्व-प्रधान और सर्वप्रिय 'माटाडोर' था। एक दिन युद्ध में जय प्राप्त करके वह संध्या के समय घर को वापस आता था। उस समय भी उसके कानों में सैकड़ों, हज़ारों 'कण्ठों' की जय-ध्वनि पहुंच रही थी। उसका मन, आशा और आनन्द से उत्फुल्लित हो रहा था। इसी समय रास्ते के बगल में एक क्षीण कण्ठ से कातर क्रन्दन ध्वनि सुनने में आई। पास जाकर उसने देखा कि एक अत्यन्त दुर्बल, क्षीण बालक रास्ते के बगल में पड़ा हुआ है। देखने से जान पड़ता था मानो वह मरने ही के लिये इस तरह से निराश होकर पड़ा हुआ है। उस बालक को देखते ही जूयन के नेत्रों में आँसू चले आये। उस दिन की विजय-प्राप्ति से उसका चित्त अब भी कोमल बना हुआ था। वह लड़के को अत्यन्त सावधानी से, गोदी में उठा कर उसकी दुरावस्था का कारण पूछने लगा। वह बोला—मुझे बड़ी भूख लगी हुई है कल सवेरे से अब तक मुझे कुछ भी खाने को नहीं मिला। जिस जिसके दरवाज़े गया हूँ सब ने मुझे धता बताया है। मैं देखने में बड़ा भद्दा हूँ। लड़के मुझे देखकर भयभीत हो जाते हैं। इसी से कोई मुझे अपने दरवाजे पर खड़ा होने नहीं देता। मैंने कितना चक्कर लगाना है, इसका अनुमान तक करना मेरे लिये

कठिन है। भूख प्यास से व्याकुल होकर मैं यहाँ पड़ा हुआ था।

जूयन ने जूलस से कहा, "मैं तुम्हें ले चलता हूँ। तुम्हे पेट भर खाने को मिलेगा। तुम्हें सुन्दर साफ बिछौने पर सुलाऊंगा इसके बाद जो तुम्हे करना होगा, वह तुम्हें कल सवेरे बताऊंगा।"

यह कह कर 'जूयन' उसे लेकर अपने होटल में पहुंचा। होटल का स्वामी उसे देखकर प्रसन्न हुआ, सो बात नहीं; किन्तु जूयन के पास बहुत धन था, इसी से उससे कुछ कहने का उसे साहस न हुआ। कुछ ही देर पहले बेचारा जूलस यहाँ पर भीख माँगने के लिये आया था। उस समय होटल के स्वामी ने उसे दुरदुरा कर खदेड़ दिया था।

दूसरे दिन जूलस ने अपने जीवन की कहानी, जितनी भी वह जानता था, जूयन से कह सुनायी। जब वह बिल्कुल बच्चा था, उसी समय वह पितृ-मातृ हीन होगया। पिता को तो वह कुछ कुछ याद भी करता था, किन्तु उसकी मां कैसी थी, यह उसे बिल्कुल याद न था। माता-पिता के मरने पर पड़ोसियों ने उसकी कुछ भी सहायता न की। उसका बदशकल भयानक चेहरा देखकर कोई उसके पास न आता था। उसकी दुर्दशा देखकर गांव का पादरी उसे अनाथालय में रख आया, किन्तु वहाँ भी उसकी अवस्था के बालक उसके पास नहीं आते। सदा उसकी सूरत शकल को लेकर इतना हँसी-मजाक किया करते,

उसे इतना चिढ़ाया करते कि उसका समय बहुत ही दुख मे बीतता। जब उसे यह सब बिलकुल असह्य होगया तो वह वहाँ से भाग कर चला गया। यह आज तीन वर्ष की बात है। इसके बाद से वह गाँव गाँव भिक्षा माँगते हुए इधर उधर फिर रहा था, किन्तु गावों मे भी उसकी लांछना की सीमा न थी। किसी दिन तो कुछ खाने को मिल जाता, किसी दिन यों ही रह जाना पड़ता। रात में बहुधा कोई उसे आश्रय नहीं देता था। कहीं न कहीं सड़क के बगल में अथवा दीवार के निकट, जाड़े से कांपते हुए, बिना खाये पिये, सारी रात गुजार देता।

जूयन जूलस को अपने पास खींच कर स्नेह भरे स्वर में बोला—"अब तुम्हें कहीं पर न जाना पड़ेगा। तुम मेरे पास रहो।" जूयन के स्नेह पूर्ण आश्रय में अच्छी तरह से खाने पीने से उसके स्वास्थ्य में बहुत कुछ उन्नति हुई। लड़के की बुद्धि प्रखर थी और उसका स्वभाव मिलनसार था। जूयन उसे सर्वदा अपने पास ही रखता। पहले तो उसने यह विचार किया कि कुछ समय तक इसे अपने पास रखूं। जब इसका शरीर बिल्कुल स्वस्थ हो जाय तो इसे किसी गिर्जाघर वा स्कूल में भेज दूंगा। किन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे जूलस के प्रति उसकी ममता इतनी हो गई कि उसे कहीं दूर भेजने का विचार आते ही उनके मनको कष्ट होने लगा। वह उसे जितना प्यार करता, जूलस उतना ही उनमें भक्ति रखता। वह परित्यक्त,

असहाय, अनाथ बालक जूयन की देवता की तरह पूजा करता। ऐसा सुन्दर, ऐसा साहसी, ऐसा महत् भला और कौन है? वास्तव में जूयन उसे इतना प्यार करता जितना प्यार उसने जीवन में कभी अनुभव तक नहीं किया था। दुर्बलों में बलवानों के प्रति, स्वभावतः श्रद्धा होती है। जो सदा सभी की दृष्टि में घृणित, सभी की अवहेलना और उपहास का पात्र था, वही इस समय जूयन के अकृत्रिम प्रेम का पात्र हो गया। फिर जूयन ने यदि देवता का स्थान ग्रहण किया तो इसमें विचित्रता ही क्या?

इसी तरह से और तीन वर्ष बीत गये। जूलस की अवस्था इस समय चौदह वर्ष की है। जिस समय वीर जूयन साँड़ों के साथ युद्ध करने को जाता तो जूलस को भी साथ ले जाता और सामने सब से बढ़िया आसन पर उसे बैठाता। जूलस वहीं बैठे बैठे सोचता—यदि इन वीरों की तरह मेरे शरीर में भी बल होता, तो क्या ही अच्छा होता। अपनी हीनता से उसे बड़ा कष्ट होता। किन्तु तो भी यह सोचकर वह अपने मन को सांत्वना देता कि जूयन मुझे इतना प्यार करता है, उसी की जीत से मैं काफी आनन्द प्राप्त करता हूँ।

जिस दिन की हम बात लिख रहे हैं, उस दिन जूयन अपना अन्तिम युद्ध करने के लिये आया था। जूयन का विवाह स्थिर हो गया है। जिस सुन्दरी के साथ उसके विवाह की बात पक्की हुई है, उसने जूयन को 'माटाडोर' के ख़तरे से भरे हुए व्यवसाय

से अपना हाथ खींच लेने के लिये उससे अनुरोध किया है। 'माटाडोर' का व्यवसाय कोई खेल नहीं, उसमें प्रतिदिन जान को हथेली पर रखकर युद्ध करना पड़ता है। सदा जूयन की भावी पत्नी का मन व्याकुल रहता। विवाह का दिन स्थिर करने के साथ साथ उसने जूयन से इस व्यवसाय को छोड़ देने की प्रतिज्ञा करा ली। आज अन्तिम दिन है, युद्ध-भूमि में तिल रखने को जगह नहीं है। हां, जूलस को सामने की अच्छी 'सीट' मिली है, किन्तु तौ भी आज उसे और कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। वह मन ही मन सोच रहा है—जूयन के साथ मेरे सुखपूर्ण जीवन का आज अन्त हो रहा है! भला आज से इस आसन पर बैठकर जूयन की वीरता देखने का कहां सौभाग्य प्राप्त होगा—उसकी जीत से मग्न हो उच्च स्वर से जयजयकार कहने को कहाँ मिलेगा! उस दिन का वह उत्सव, चारों ओर सजाये हुए फूल-पत्ते, रंग रंग की पताकायें, झण्डियाँ, वाद्यध्वनि कुछ भी उसे भला नहीं लगता था। जूयन ने उसे अपने साथ नये घर में ले चलने को कहा था, तौ भी उसमें कुछ भी उत्साह नहीं रह गया था। उसे जान पड़ता था कि आज मेरे जीवन का अन्त होगा। सुख के वे दिन फिर लौट कर न आयँगे। अब वह अकेले जूयन के साथ एकन्त नहीं रह सकेगा। अब एक ऐसा मनुष्य आवेगा जो जूयन के अधिक प्यार प्रेम का पात्र होगा। यदि वह उसे इतना प्यार नहीं करता, तो नया आदमी जूलस को

बिल्कुल बुरा जान पड़ता, किन्तु वहाँ की परिस्थिति भिन्न थी। उसका देवता जूयन जिसको इतना प्यार करता है वह क्या कभी जूलस की अश्रद्धा का पात्र हो सकता है ?

युद्ध के फलाफल का योद्धाओं में कौन पुरस्कार पाने का अधिक हक़दार है, इन सब बातों का निर्णय करने के लिये एक सभापति चुन लिया जाता था। इस दिन जो सभापति निर्वाचित हुए थे, वह आकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये—उन्हीं के बगल में जूलस के बैठने का स्थान था। जब सभापति ने आसन ग्रहण किया, तो सब योद्धओं ने एक साथ ही आकर उन्हें अभिवादन किया। जूयन उन सब के सम्मुख खड़ा था। अभिवादन हो जाने पर ध्वजवाहकों ने शृङ्गनाद किया। युद्ध आरंभ हुआ।

पहले दो चार योद्धा आये। उनका काम साँड़ को खिझाना था, वे उसके सामने जाकर रंगीन कपड़े फहराने लगे। जिस पर वह आक्रमण करने को दौड़ता वे उसके सींग पर रंगीन कपड़ा फेक कर भाग खड़े होते। इससे साँड़ अत्यन्त क्रुद्ध हो कर गर्ज्जते हुए दौड़ने लगा। इसके बाद एक घुड़-सवार योद्धा आया। उसके हाथ में छोटी तलवार थी। उसे देखते ही साँड़ उसकी ओर दौड़ते हुए आक्रमण करने को उद्यत हुआ, घोड़े को इधर-उधर घुमा-फिरा कर, सुविधा पाकर, उस छोटी सी तलवार से उसे आघात किया। साँड़ ने यन्त्रणा से अस्थिर हो

पागल की तरह आकर उस पर आक्रमण किया। वह घोड़े से चट से कूद कर भाग गया। तब साँड़ ने सीगों से घोड़े को मार गिराया। सत्र के अन्त में जूयन आया। सभापति के मंच के सन्मुख खड़ा होकर उसने उन्हे नमस्कार किया। इसके बाद उसने अपनी टोपी खोल कर दर्शकों की ओर फेंक दी। जो उस टोपी को पकड़ लेगा; युद्ध समाप्त होने तक टोपी उसी के पास रहेगी। इस सम्मान प्राप्ति के लिये सभी उठ कर, टोपी पकड़ने का प्रयत्न करने लगे किन्तु जूयन ने ऐसे अन्दाज से टोपी फेंकी थी कि वह ठीक जूलस के सामने जाकर गिरी। उसने चट-पट उठकर उसे उठा लिया। गर्व के साथ मुस्कराते हुए उसे अपनी गोदी में लेकर वह बैठ रहा।

तब जूयन धीरे धीरे साँड़ के सामने गया। रक्तपात से वह उस समय दुर्बल हो चला था। उसके नेत्रों के सामने लाल पताकाये बारम्बार फहराते हुए उसे तलवार से खोंच कर उत्तेजित करने लगा। कुछ देर तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा। इसके बाद असली लड़ाई का अवसर आया। खिझाने का काम छोड़ कर ज्योंही वह उस पर आक्रमण करने को जा रहा था कि इतने में, पैर फिसल जाने के कारण मुँह के बल, जमीन पर गिर पड़ा। अब रक्षा का कोई उपाय न था। सारी दर्शक-मण्डली से एक अस्फुट वेदना-ध्वनि उठी। इस बार साँड़ सीगों से मार कर उसे यमलोक पहुँचा देगा। दर्शकों ने भय से आँखे मूंद ली।

जूलस' जूयन को विपत्ति ग्रस्त देख कर भय से चिल्ला उठा इसके बाद दौड़ता हुआ साँड़ के सामने चला गया। क्रुद्ध उन्म साँड़ ने, शीघ्र ही, उसे तीक्ष्ण धारवाले सींग से मार गिराया। रक्तपात से ज़मीन भीग गई। जूयन सँभल कर उठा। उस सम दर्शकों ने आँखें खोलकर देखा—उनका वीर जूयन अक्षत शरी मे खड़ा है, किन्तु बदशकल, क्षीण शरीर वाले बालक की मृतदे पड़ी हुई है। अपनी जान गँवा कर इसने अपने आश्रय-दाता क ऋण चुका दिया है।

---

(६) सहमरण

[१]

युद्ध की घोषणा हो चुकी है। कौन कौन भेजा जायगा इसका कुछ निश्चय नहीं है। पिता, माता, स्त्री, भगिनी सभी उत्कण्ठित हैं। जननी जन्म-भूमि अपनी सन्तान को अपने गोदी में कब बुलायँगी इसका कुछ ठीक नहीं।

घर घर वियोग का दीर्घ निश्वास उठ रहा है। चंद्रप्रभा बड़े ही कोमल स्वभाव की है। वह सुशीला से बोली—बहन प्राणेश्वर युद्ध पर भेजे जाने वाले हैं। जब से मैंने यह सम्वाद सुना है, मेरा मन बड़ा चंचल हो उठा है। वीर की स्त्री भी होते हुए मैं

वीरांगणा क्यो न हुई? बोलो बहन, मैं अपने हृदय को किस प्रकार समझाऊँ?

सुशीला अपने अरुण अधर को फुलाकर बोली—"यही बात है! इसी के लिये इतना सोच विचार कर रही हो! मान लो, युद्ध समाप्त होने पर भैया घर लौट आये, उस समय तुम्हें कितना आनन्द प्राप्त होगा! विजय-श्री, प्रतिष्ठा और सौभाग्य सभी कुछ तुम्हें एक ही साथ प्राप्त होंगे। वह अच्छा, या इस समय निराश होना। छिः छिः, वीर की स्त्री होकर ऐसी दुर्बलता!"

चन्द्र०—मेरा मन कहता है कि इस यात्रा में पराजय और नैराश ही हाथ आयेगा। सुशीला, मुझे तो मृत्यु तक दिखाई पड़ती है।"

सुशीला,—"छिः, भौजी तुम अब गृहस्वामिनी हो गई हो। यह तो सोचो, तुम्हारा कर्तव्य क्या है, कितना बड़ा उत्तरदायित्व है!

लड़कपन की वही भोली चन्दा बने रहने से आजकल की अग्निपरीक्षा के दिन कैसे व्यतीत हो सकते हैं? तुम्हें तो आज खुशी खुशी उन्हें रण पर जाने के लिये विदा करना पड़ेगा!

चन्द्र०—ठीक बात है सुशीला! परमेश्वर ने मुझ जैसी दुर्बल स्त्री के ऊपर कर्त्तव्य का कठोर भार क्यों दिया है, इसका रहस्य कौन जान सकता है?

सुशीला—कौन कह सकता है? भौजी! तुम हम सभी तो

समान हैं। फिर भी अपने को अबला कह कर परीक्षा के समय भयभीत क्यों होती हो ?

चन्द्र०—जिसे देखकर दुःख की तीव्रता कम होती है, वेदना की कठिन यन्त्रणा दूर जाती है, उसे आज विदा कर देना होगा। जान पड़ता है, इह लोक में अब उन्हें न पाऊँगी ! सुशीला, आज एकबारगी पस्त-हिम्मत हो रही हूँ !

सुशीला—तुम्हारी कायरता ने तुम्हें पस्त-हिम्मत कर दिया है। क्या तुम नहीं जानती हो कि धर्म-पुस्तकों में लिखा है कि कायरता ही कर्त्तव्य के आह्वान के समय मनुष्य को च्युत करती है।

चन्द्र०—सुशीला परमेश्वर सेनापति क्यों हुए ? वह जैसे धार्मिक हैं, उनके लिये तो यह अच्छा था वह दरिद्र कृषक होते ! सेनापति के कठोर कर्त्तव्य के लिये मै सशंकित हूँ। प्राणेश्वर, मृत्यु की भयानक लीलाएँ किस प्रकार देखेगें ? ऐसे दृश्य मनुष्य के हृदय को कठोर कर देते है।

सुशीला—भौजी, भैया एक ओर तो सत्कार्य और कर्त्तव्य कार्य मे वज्र की तरह कठोर है और दूसरी ओर दूसरों के दुःख से प्रभावित होकर आसुओं से जमीन भिगो देते हैं। उनका सा विश्वप्रेमी हृदय मैंने कही नही देखा।

चन्द्रा०—निरुत्तर होकर विजयसिह के हृदय की महानता के विषय में विचार करने लगी। विचार करने पर उसने देखा, कठोर

कर्त्तव्य-पालन के समय मेरी प्रसन्नता देखकर उनका उत्साह दुगना बढ़ जायगा। तब आज के कर्तव्य से मैं क्यों अधीर होऊँ! नहीं। आज वियोग की कठिन आशंका से हृदय कितना ही अधीर क्यो न हो, प्रकट रूप में स्वामी को प्रफुल्ल वदन से ही विदा दूँगी।

युद्ध-यात्रा के लिये सैनिक प्रस्तुत हैं। सेनापति की सैन्य-शृङ्खला और कौशल देखकर सभी प्रशंसा कर रहे हैं। युद्ध पर जाने वाले सिपाहियो की शृङ्खला देककर राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। वह सेनापति की रण-निपुणता की बात पहले ही से जानते है। सेनापति की दक्षता से वह बहुत युद्धों में जय प्राप्त कर चुके हैं। इकट्ठे हुए सिपाहियो के बीच राजा विजयसिंह को आह्वान कर अपने गले से मोतियों का हार उपहार में दे कर बोले—"वीर! विजय प्राप्त करो; अथवा वीरो की तरह तलवार की धार पर अन्तिम सांस लेते हुए चिर विश्राम करो। यही तुम्हारे लिये उपयुक्त पुरस्कार है। मैंने तुम्हे जो कुछ दिया है, वह बिल्कुल तुच्छ है।"

विजय अपना उन्नत मस्तक कुछ नवाकर बोले—"जीवन हो अथवा मृत्यु, सम्राट के आशीर्वाद से, वीरो सी हो और ईश्वर से यही मेरी एक आकांक्षा है। मैं जिस प्रकार महाराजका सेवक हूँ, वैसेही संसार के स्वामी ईश्वर का भी सेवक हूँ। उन्होने प्रत्येक मनुष्य को सेनापति का कठोर कर्त्तव्य-भार देकर पृथ्वी पर भेजा है।

संसार के अन्याय अत्याचारों को दलन कर, शान्ति स्थापन की चेष्टा में आजीवन उसके प्रिय कार्य में लगा रहना हम लोगों का कर्त्तव्य है। इसमे चाहे जीवन रहे या चला जाय।" एकत्रित सैनिक मण्डली एवं रण क्षेत्र मे जाने वाले घुड़ सवार तथा पैदल सिपाही, सेनापति की वीरता पूर्ण बातो को सुनकर, दिगन्त विकम्पित कर, उल्लास से, जय-ध्वनि करने लगे। राजा आनन्द मे गद्‌गद् चित्त होकर सेनापति को हृदय से लगाकर बोले—"वीर! तुम्हारी वीरता से मै पुलकित हो गया हूँ। सारी सेना तुम्हारे कार्य से मुग्ध है। ईश्वर तुम्हे सफलता प्रदान करें।" यह कह कर राजा सैन्य मण्डली के साथ उन्हें अभिवादन कर वहां मे चले गये।

युद्ध पर जाने की पोशाक पहनकर विजय सिंह चन्द्रावती के पास आकर बोले—"चन्दा! प्यारी चन्दा! तुमने तो सब सुना है। तुम उदास क्यो हो? पहले भी कई बार रणक्षेत्र पर गया हूँ। प्रत्येक यात्रा के समय तुमने देवी की तरह पुष्प वर्षा करके सब लोगों को उत्साहित किया है। आज भी तो उसी तरह की यात्रा है, फिर आज उदास क्यो हो रही हो?" चन्द्रावती म्लान हँसी हँस कर बोली—"प्राणाधार तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा मे थी। इस समय तक तुम्हारे ही सम्बन्ध मे सोच विचार रही थी। इस बार की यात्रा के समय मेरा हृदय अस्थिर हो रहा है। न जाने कौन, मेरे कान

के पास कह रहा है, यही हम लोगों की अन्तिम भेंट है।

यह कह कर चन्द्रावती ने अपने गुलाब के समान सुन्दर मुख को नत कर लिया। उसके हृदय में जो तुमुल युद्ध मच रहा था, वह उसे छिपाने की चेष्टा करने लगी।

विजयसिंह बोले—"प्रिये, मान लो यही हम लोगों की अन्तिम मुलाक़ात हो, तो इससे क्या! हम दोनों ने कितनी बार ईश्वर से प्रार्थना की है, यहाँ का यह क्षणिक मिलन हम लोग नहीं चाहते। यह तो प्रवास है। जहाँ पर हम लोगों का ईश्वर के चरणों के निकट अनन्त मिलन होगा, वही हम लोगों का असली देश है। यदि ईश्वर की यही इच्छा है, तो यही हो। इसके लिये वीर की स्त्री वीरांगना को घबड़ा कर, ईश्वर के निकट अपराधी होना अभीष्ट नहीं।"

चन्द्रावती इस बार अपना नत मस्तक उठाकर बड़ी बड़ी आँखों से विजयसिंह को नेत्र भर देखने लगी। अधिक समय नहीं है। विजय चन्द्रावती के निकट विदा लेने आया था, उसे आँसू भरे देख कर उसके वीर हृदय को चोट पहुंची, किन्तु उसको समझाने का अब समय न था।

वह बोले—"चन्दा! चन्दा!! एक बार हँसते हुए चेहरे से विदा दो। आज मैं यही देखने के लिये आया हूँ।"

चन्द्रावती स्वाभाविक प्रफुल्लता की हँसी मुख पर लाने की चेष्टा करने पर भी वैसी हँसी न हँस सकी। वह म्लान हँसी हँस

कर सामने रखे हुए गुलदस्ते में से फूल लेकर विजय के ऊपर फूल बरसाते बरसाते अवसन्न हो पड़ीं। पीछे से ठीक उसी समय सुशीला ने आकर उसे धर लिया। अब विजय ने सुशीला से कहा—बहन, विदा होता हूँ। परमेश्वर तुम्हारी रक्षा करें।"

सैनिको! बढ़ो, बढ़ो, अब और विलम्ब नहीं है। पुत्रों के रहते जननी जन्म-भूमि की बेइज्जती कभी नहीं हो सकती। या आज देश का संकट निवारण करेंगे नहीं तो देश के अन्न-जल से पुष्ट देह को देश के कार्य के लिये उसी के अंक में विसर्जित कर देंगे।"

सेनापति ने सैनिकों को युद्ध के बाजे की ध्वनि के साथ अग्रसर होने का आदेश दिया। दिन-रात की पर्वा न करके सैनिक अविराम गति से गन्तव्य स्थान को पहुंच गये।

बड़े भारी मैदान में रण क्षेत्र है। युद्ध आरंभ हो गया है। सेनापति के दक्ष परिचालन से सैनिकों ने ऐसी रण-चातुरी दिखाई कि पहले ही से विपक्ष दल हटने लगा। सैनिक दुगुने उत्साह से युद्ध करने लगे। उनकी शक्ति को सहन न कर विपक्षदल पराजित होकर रणक्षेत्र परित्याग कर चला गया।

पहाड के पास ही विजयी दल विश्राम कर रहा है। हठात् विपक्षदल ने पहाड़ की दूसरी बग़ल से बे-खटके आराम करते हुए सिपाहियों पर आक्रमण कर दिया।

सेनापति की सीटी की आवाज़ को सुनते ही सैनिक क्षण भर

मे तैयार हो गये। फिर बात की बात में, दोनों दलों में तुमुल युद्ध होने लगा। रण-क्षेत्र के विषम संघर्षण के मध्य उसने देखा कि योद्धा का वेष धारण किये एक नवीन युवक बड़ी फुर्ती से सैनिकों के लिये गोला बारूद दे रहा है और रण-संगीत गाकर उन्हे रणोन्मत्त कर रहा है।

दूर से, परिचित मधुर कण्ठ स्वर रणस्थल के कोलाहल को भेद करके सेनापति के कानों में भी पहुंचा। सेनापति स्वर को लक्ष्य करके युवक के सामने हुए। युवक के नवीन उत्साह भरे चेहरे पर मानो एक स्मृति विजड़ित करुणाशान्त मुख की छाया थी। देखते ही सेनापति के हृदय मे बिजली दौड़ गई। किन्तु उसने दूसरे ही क्षण हृदय को संयत करके कहा—"युवक, आग का गोला लेकर यहाँ पर मरने के लिये क्यों आये हो?" युवक रणस्थल को निनादित करके बोला—"प्रियजनों के लिये मेरा हृदय जो करना चाहता है, वही करने आया हूँ। इसमें मुझे कौन बाधा पहुंचा सकता है?"

ठीक उसी समय विपक्षदल का एक गोला सेनापति के निकट गिरा और क्षण भर में युवक बड़ी फुर्ती से उस गोले के सामने छाती खोलकर खड़ा हो गया। इसके बाद गोले के आवाज के साथ ही, मीठी मुसुकान भरी दृष्टि सेनापति के प्रति डाल कर वह मृत्यु की शान्तिमय गोदी में सो गया।

सेनापति दीर्घ निश्वास छोड़कर बोले—"ओ, समझ गया।"

सेनापति जीवित हैं या मर गये ! इन्हें क्या हो गया ? स्थान, काल, देश सभी को क्या भूल गये ? सैनिक विचलित हो उठे । युद्ध में विजय प्राप्त हो चुकी है । किन्तु इसी समय विपक्षदल के एक और गोले ने आकर सेनापति की छाती को छेद डाला । उस समय केवल एक अस्फुट ध्वनि सुनाई पड़ी—"प्यारी चन्दा ।"

लोग कहते हैं कि आज भी पथिक उस रणक्षेत्र की ओर अंगुली निर्देश कर आपस में यह बातचीत करते हुए जाते हैं कि यही वह स्थल है जहाँ दो आत्माओं ने जीवन की अन्तिम सांसों में भी सहयोग का ज्वलन्त आदर्श निभाया था ।

---

(७) वीर की समाधि

आज से ५० वर्ष पहले की बात है । अमेरिका के संयुक्त राज्य में वहां के आदिम निवासियों से गोरी जातियों की लड़ाई हुई थी । उस समय डेनिस होगन २९ वीं पैदल सेना का एक सिपाही था । उसे टेलीग्राफ का भी काम करना पड़ता था । सम्वाद भेजने के लिये अनेक प्रकार के सङ्केतों को काम मे लाना पड़ता था । कुछ दिन अभ्यास और शिक्षा पाये विना कोई इस काम को नहीं कर सकता था । होगन पहले एक टेलीग्राफ आफिस में काम करता था और उस आफिस में वह एक चतुर काम करने वाला समझा जाता था । किन्तु इस युद्ध के कारण रेड

इण्डियनों ने सभी स्थानों के तार काट डाले थे जिससे वहुत से टेलीग्राफ आफिस बन्द हो गये, और उसके साथ ही होगन की नौकरी भी जाती रही। अन्त मे जीविका का अन्य मार्ग न देख कर वह सैनिक का काम करने को वाध्य हुआ। इसके थोड़े ही दिन बाद फिलएट किले के टेलीग्राफ कर्मचारी का पद रिक्त हुआ। यह काम भी सैनिको से ही लिया जाता था। इसलिये होगन सब से पहले यदि इस काम के लिये नियुक्त हुआ तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या?

एक दिन की बात है, होगन खा पी कर अपने भाग्य पर विचार करने लगा। कहाँ सुख से दिन कटते थे, और कहां मौत के मुख में आ पड़ा! चारों ओर शत्रु हैं। हठात् टेलीग्राफ का यन्त्र वज उठा और निम्न आशय का सम्वाद आया—

"समर-विभाग का प्रधान कार्यालय,
सेण्टपाल, नम्बर २६-१८७"

सेनापति के पास—

फोर्ट फिलएट मराटाना।

शिविर से इण्डियन वाहर हो गये हैं। हुक्म पाते ही युद्ध में अग्रसर होने के लिये तैयार रहो। ३० दिन के लिये प्रत्येक सैनिक के पास रसद के सिवा २०० गोलियां रहनी चाहिये। इसका प्रबन्ध करके तत्क्षण सूचना दो।

प्रधान सेनापति के आदेश से
स्मिथ, सरकारी एडजुटेएट जनरल।

डेनिस के पास दूसरा वाहक न था। वह स्वयम् सम्वाद लेकर कर्नल क्लार्क के पास उपस्थित हुआ। कर्नल साहब उस समय भोजन कर रहे थे। खबर सुनते ही हल-चल मच गई। उस दिन-रात के आठ बजे कर्नल क्लार्क ने सारा प्रबन्ध ठीक करके प्रधान सेनापति को सूचना दी। रात के १२ बजे आज्ञा दी गई कि प्रातःकाल होते ही तुम लोगों को 'रेडवड' की ओर यात्रा करनी होगी, और वहाँ जाकर एक ऐसे स्थान पर अधिकार जमाना होगा, जिससे इण्डियन नदी को पार न कर सके। वहीं उत्तर दिशा से दो सैनिक दल आकर उनसे मिल जाएंगे। इस तरह तीन दल एक साथ मिलकर युद्ध करेंगे, तो शत्रु को भगाने मे समर्थ होगे। होगन, कर्नल की आज्ञा पाकर दूसरे दिन सवेरे ५०० सैनिको को लेकर चल पड़ा। साथ में टेलीग्राफ का यन्त्र लेना न भूला।

यथा समय २९ वीं पैदल सेना ने 'रेडवड' पहुंच कर शिविर संस्थापित किया। किन्तु दूसरे दो दलो का चिन्ह तक उन्हें नही दिखाई पड़ा। रात्रि के समय इण्डियनो ने आना आरम्भ किया। दूसरे दिन देखने मे आया हजारो इण्डियन सैनिक चारो ओर से उन्हे घेरे हुए खड़े हैं।

११ बजे लड़ाई शुरू हुई। कर्नल ने आदेश दिया—"व्यर्थ

में गोला-बारूद नष्ट न करो। किसी को लक्ष्य किये बिना गोली न छोड़ो।" सेनापति ने सोचा कि जितने दिन तक गोले बारूद रहेंगे, उतने दिन तक आत्म-रक्षा करने में समर्थ होंगे।

इसी प्रकार प्रतीक्षा मे तीन दिन बीत गये; किन्तु वे दोनों दल न आये। जल लाने के लिये नदी के तट पर जाने से बहुत से गोली के शिकार हुए। तीसरे दिन शाम के समय कर्नेल ने सारे सैनिकों को एकत्र करके कहा—"अब अधिक दिन तक हम लोगों के लिये आत्म-रक्षा करना असम्भव है। फोर्ट स्काट यहाँ से ६० मील है। यदि इण्डियन के व्यूह को भेद कर वहाँ खबर पहुंचा दें तो तीन दिन के बाद हम लोगों के उद्धार पाने की आशा हो सकेगी।

बहुत से जाने को तैयार हुए। कर्नेल ने उनमे से लेफ्टिनेन्ट जार्भिस को जाने के लिये चुना। इतने मे होगन उनके सामने आकर बोला—"महाशय, मैं एक और अच्छा उपाय बतलाता हुं। फोर्ट स्काट और कियारिन नगर के बीच जो टेलीग्राफ का तार है, वह यहाँ से केवल २५ मील दक्षिण है। इधर हमारी छावनी है अन्त मे एक छोटी सी नदी है। यदि मुझे एक अच्छा घोड़ा मिल जाय तो इस रास्ते से चुपके-चुपके विपक्ष सेना को पार कर २-३ घंटे में तार तक पहुंच जाऊँगा। मेरे पास टेलीग्राफ का एक यन्त्र भी है, उसी की सहायता से फोर्ट स्काट को खबर भेजने मे विलम्ब नहीं होगा। विशेष कर जार्भिस के स्त्री-पुत्र

वर्तमान हैं, और मैं अविवाहित हूँ, मेरे लिये रोने वाला कोई नहीं है। आप इन सब बातों पर विचार कर लीजिये।"

कर्नल ने उसकी बात मान ली और अपना घोड़ा होगन को देकर बोले—"तुम यथा-शक्ति प्रयत्न करना; क्योंकि तुम्हीं पर हम लोगों का जीवन निर्भर है। ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।" होगन ने कहा—"यदि मैं अपने प्रयत्न में असफल रहूँ तो इसका कारण मेरी मृत्यु समझिये।"

रात के तीन बजे होगन तैयार हुआ। चलने मे आवाज़ न हो, इसके लिये घोड़ें के पैरों के तले में चिथड़े लपेट दिये गये। इसके बाद उसने पिस्तौल, बारूद और उस टेलीग्राफ के यन्त्र को लेकर यात्रा की। नदी पार कर किनारे के सहारे वह बहुत दूर तक बढ़ता गया। जब उसने देखा कि शत्रु सेना को बहुत पीछे छोड़ आया हूँ, तब वह ऊपर को चढ़ा। चारो ओर दृष्टि डाल कर देखा तो कहीं शत्रु का नामोनिशान तक न था। इसे देखकर उस के चित्त को कुछ ढाढ़स हुआ ही था कि उसने ठीक अपने सामने एक अश्वारोही इण्डियन को आते देखा। होगन ने ऐसा निशाना ताक कर गोली चलाई कि वह वहीं खेत रहा।

पिस्तौल के शब्द को सुनकर शत्रु लोग जग पड़े और तुरन्त एक अश्वारोही दल ने होगन का पीछा किया। उसके चारों ओर लगातार गोलियाँ बरसने लगीं, किन्तु उसे एक गोली भी न

लगी। होगन भी मौक़ा पाकर पीछे को मुड़कर पिस्तौल चलाने लगा। इस प्रकार शत्रुओं की संख्या कम होने लगी, किन्तु एक गोली आकर उसके दाहिने कन्धे में लगी और वह हाथ बेकार हो गया। वह बायें हाथ मे जीन पकड़ कर प्राण-पण मे घोड़ा दौड़ाने लगा। अंत में केवल एक अनुसरण करने वाला रह गया। उस समय उसके पास केवल एक गोली रह गई थी। वह उसने इसलिये रख छोड़ी कि अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर छोड़ूँगा।

होगन का शत्रु उसके इतना निकट आ गया कि ऐसा मालूम हुआ कि अब उसे पकड़ लेगा। सामने आधे मील की दूरी पर तार का खम्भा दिखाई पड़ रहा था, होगन की इच्छा हुई कि गोली चलाऊँ, किन्तु फिर उसके मन में यह बात आई कि दहना हाथ तो ख़राब हो ही गया है—बायें हाथ पर कौन भरोसा ? यदि गोली न लगी तो शत्रु के हाथ मृत्यु निश्चित है। ऐसी दशा में फोर्ट-स्काट को ख़बर न भेज सकूंगा और मेरे मित्रों की रक्षा का द्वार एकदम बन्द हो जायगा। होगन और फुर्ती से चल पड़ा।

पीछे से बन्दूक की आवाज़ हुई। और 'सूं' करती हुई एक गोली होगन के सिर के पास से निकल गई। दूसरे ही क्षण एक गोली कान को बेधती हुई निकल गई। वह एक छलाँग में घोड़े से कूदकर छाती के बल, पृथ्वी पर सो गया और

बेकाम हाथ पर पिस्तौल रख कर बायें हाथ से उसे छोड़ दिया। अश्वारोही इण्डियन विद्ध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

होगन ने शत्रु को इस प्रकार परास्त कर ऊर्द्धश्वास से तार की ओर दौड़ना आरम्भ किया। एक तो असह्य शीत पड़ रही थी, दूसरे आहत स्थान से अनवरत रक्तस्राव होने से वह अत्यन्त दुर्बल हो गया था। सिर घूमने लगा और आँखें ज्योति-हीन हो गईं तो भी वह बाज़ आनेवाला न था। अमानुषिक शक्ति से वह तार के पास पहुंच ही गया।

पतले खम्भे पर तार झूल रहा था, किन्तु उस समय उसमें इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह उसे उखाड़ सके। परिश्रम करने पर भी वह उस पर चढ़ न सका। उसका घोडा उसके पीछे, कुछ दूर पर, विश्राम कर रहा था। उसकी ओर होगन की दृष्टि गई। उसकी पीठ पर एक रस्सी को देख उसे एक उपाय सूझा। उसने घोड़े की पीठ पर चढ़ कर उस रस्सी को तार के खम्भे पर बांध दिया और पिस्तौल के सहारे तार को तोड़ डाला। और एक आधे भाग को यन्त्र से संयुक्तकर बांये हाथ से संवाद भेजने लगा।

फ़ोर्ट स्कॉट के कर्मचारी के पास निम्न-लिखित समाचार भेजा—

फोर्ट स्कॉट के सेनापति के पास, मराटाना।

"२९वीं पैदल सेना शत्रुओं की भारी सेना से. रेडवड के

चौरस्ते के ठीक उत्तर, घिर गई है। कर्नल क्लार्क वहुत शीघ्र सहायता पहुंचाने की प्रार्थना कर रहे हैं। गोला-बारूद सभी ख़तम हो चुका है। अवस्था अत्यन्त विपत्ति-जनक है। मैंने रात के ३ बजे उस स्थान को छोड़ा है।"

"डेनिस हो—" बाकी अंश पूरा न हुआ। दुर्ग के अध्यक्ष कर्नल फस्टर के आदेश से, बात की बात में, सारी सेना सज्जित होकर रेडवर्ड की ओर चल पड़ी।

इधर हेगन के जाने के कुछ ही देर बाद नदी के दूसरे पार बन्दूक का शब्द सुन कर, उसके साथियों को यह आशङ्का हुई कि डेनिस मारा गया; किन्तु कर्नल क्लार्क ने एक-बारगी उसकी आशा न छोड़ी। इसके दूसरे दिन एक गोली आकर कर्नल के जंघे में लगी किन्तु इससे भी उनकी भौंह बल नहीं खायी। आहत स्थान को बाँधकर वह युद्ध करने लगे। उस दिन बहुत से सैनिक धराशायी हुए।

रात के ९ बजे कर्नल क्लार्क और कर्नल ट्रेसी एक साथ सो रहे थे। सहसा कर्नल उठ बैठे और ट्रेसी का हाथ पकड़ कर बोले।

"यह सुनो, किसकी आहट है?"

ट्रेसी ने कहा—"न, कुछ नहीं है। आप सोने की चेष्टा कीजिये।"

क्लार्क—"नहीं, नहीं, क्या तुम सुन नहीं रहे हो?"

"यह तो घोड़ों की टाप का शब्द है। हमारी सहायता करने को सेना आ रही है।"

कुछ ही देर बाद कर्नेल स्काट ने आकर शत्रु की सेना को हराकर भगा दिया।

कर्नेल क्लार्क ने कर्नेल स्काट के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हुए पूछा—

"होगन कहाँ है?"

स्काट—"होगन? यह होगन कौन है?"

क्लार्क—"क्यों, आप इसे नही जानते? इसी ने तो शत्रु के बीच से जाकर आपको खबर दी है। आपके साथ उसकी देखा-देखी नहीं हुई है।"

एक सैनिक दल उसी रात को होगन के अनुसन्धान में बाहर निकला।

बहुत खोजने पर अन्त मे उन्होने होगन को चिर-निद्रा में सोते हुए पाया। उसके समीप ही एक इण्डियन की मृत देह थी। उसके एक हाथ की मुट्ठी में होगन के बाल थे। किन्तु इतने पर भी होगन बायें हाथ में टेलीग्राफ का यन्त्र धरे हुए था। मस्तक पर एक गोली के आघात ने शोणित-रेखा से होगन की मृत्यु का कारण मानो लिख रखा था।

होगन की गोली से वह इण्डियन सांघातिक रूप से आहत तो हुआ था, किन्तु स्वभावसुलभ प्रतिहिंसा की वृत्ति को चरितार्थ

करने के लिये, आसन्न मृत्यु की उपेक्षा करके वह अत्यन्त कष्ट के साथ पीछे-पीछे आया। होगन जिस समय खबर भेजने में व्यस्त था उस समय इण्डियन की गोली ने, अलक्षित रूप से, एक विश्वासी कर्तव्यपरायण जीवन का अन्त कर दिया। किन्तु सौभाग्य की बात यह थी कि इसके पहले ही खबर चली गई थी। अपना नाम हो—तक ही लिख पाया था, शेष अंश न लिख सका था।

इसी स्थान पर होगन को समाधि दी गई। एक पत्थर के फलक पर निम्न-लिखित शब्द होगन की वीरता के साक्षी स्वरूप लिखे हुए हैं।

"डेनिस होगन"

साधारण सेना

"वी विभाग, २९वीं संयुक्त राज्य की सेना का था। दूसरों की जीवन-रक्षा के लिये उसने अपने को मृत्यु के हाथों में समर्पित कर दिया।"

---

(८) प्रतिशोध ।

[१]

एक सजे हुए कमरे में वर्द्वान के राजा कृष्णराम राय दोपहर के समय विश्राम कर रहे थे। सहसा वाहर के एक प्रवल आघात से दरवाजा खुल गया और साथ ही उनकी तन्द्रा भी टूट गयी । कृष्णराम ने दरवाजा खोलनेवाले से डरी हुई आवाज मे पूछा—"क्या खवर है ?"

"खवर बहुत ही बुरी है ।"

"कैसी ख़बर है ? स्पष्ट रूप से कहो ।"

द्वार खोलने वाले ने उत्तर दिया—"शत्रु वर्द्वान के पास पहुंच गये हैं । यद्यपि वे बाँका के उस पार हैं, किन्तु शीघ्र ही वे नगर पर आक्रमण करेंगे, पठान सर्दार रहीम खां भी उनसे मिल गया है ।"

"कोतवाल को यह खवर दे दी है ?"

"उन्हे ख़वर दे करके ही महाराज के पास आया हूँ ।"

राजा वोले—"इस समय उपाय क्या है ?" अच्छा, जाओ, कोतवाल को भेजो ।"

"जो आज्ञा ।" कह कर दरवाजा खोलने वाला चला गया । वह राजा का दूत है। दूत के चले जाने पर कृष्णराम ने एक दूसरे कमरे मे प्रवेश किया ।

वर्द्धवान राज्य के चेतोया और वर्दा नामक स्थानो के जमीं-दार सभासिंह के साथ कृष्णराम राय का विरोध हो गया था। कृष्णराम ऐश्वर्य्य और क्षमता में पश्चिमी वंगाल में अद्वितीय थे। सभासिंह भी उनके अधीन थे, लेकिन सभासिह से उनकी बढ़ती सह्य न हुई। क्रमशः दोनों में विवाद का सूत्रपात हुआ और अन्त में उसने भीषण रूप धारण किया। सभासिंह कृष्णराम की प्रतिद्वन्दिता मे न उठते, लेकिन राजा को नष्ट करने की इच्छा उनके हृदय मे अत्यन्त बलवती हो उठी। उन्होंने बहुत दिनों मे तैयारी कर यथेष्ट सेना इकट्ठी कर रखी थी। कृष्णराम को भीतर ही भीतर उनकी तैयारी का पता चल गया था।

जब बहुत चेष्टा करने पर भी उनमे राजा से अकेले लोहा लेने का साहस न हुआ तो सभासिंह ने उड़ीसा के पठान सरदार रहीम खाँ से सहायता की प्रार्थना की। रहीम खाँ ने सभासिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह अपनी प्रबल सेना लेकर उस से आ मिला। यथा समय दोनों मिल कर गुप्त भाव से बर्द्धवान पहुँचे। दूत ने यही सम्वाद राजा को दिया था। इसके पहले राजा उनके मिल जाने के सम्बन्ध की और दूसरी बातों को नहीं जानते थे। जिस समय यह घटना घटित हुई थी, उस समय सत्रहवीं शताब्दी समाप्त होने को थी।

कृष्णराम ने, अन्त में, जिस कमरे मे प्रवेश किया, वह अस्त्रागार था। उसमें नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित

और सुरक्षित थे। तीर, तलवार, बर्छे, ढाल, बन्दूक आदि किसी का भी अभाव न था। वह वर्म-चर्म से सुसज्जित हो क़मर में तलवार लटका कर हाथ में बन्दूक लेकर अस्त्रागार से बाहर निकले। उनके कमर के नीचे एक और छोटा सा अस्त्र लटक रहा था। राजा उस कमरे से ज्योंही बाहर हुए त्योंही रणसाज से सज्जित हो कर कोतवाल ने उन्हें अभिवादन किया। राजा ने पूछा—"कोतवाल, सब सुना है न?"

कोतवाल ने उत्तर दिया, "हाँ श्रीमान्, सब सुना है"

राजा बोले—अब कौनसा रास्ता है?

कोतवाल ने उत्तर दिया—युद्ध छोड़ कर दूसरा रास्ता दिखाई नहीं पड़ता।"

राजा बोले—"अच्छा, तुम इसी क्षण सेना में जाओ, मैं एक बार अन्तःपुर से लौट कर आता हूँ, मैं तुम्हारे पीछे ही पहुंचूँगा।"

"महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है", कह कर कोतवाल चला गया। राजा ने भी अन्तःपुर में प्रवेश किया।

[२]

अन्तःपुर मे दोपहर के भोजन का कोलाहल मचा हुआ था। दास-दासियों और दूसरे परिजन-वर्ग का भोजन अभी समाप्त नहीं हुआ है। उन्हीं के बोल से अन्तःपुर प्रतिध्वनित हो रहा है। राजा ने इसी शोरगुल के बीच होते हुए रानी के कमरे में प्रवेश

किया। रानी गलीचे के ऊपर पड़ी हुई विश्राम कर रही थीं। उनकी बगल में उनकी षोड़श वर्षीया कन्या अपने बड़े भाई के लिये पासा खेलने का घर बुन रही थी। रानी प्रौढ़ावस्था को पार कर वृद्धावस्था में प्रवेश कर रही थीं, किन्तु नवीन यौवन से राजकन्या की रूपराशि खिली हुई चांदनी की तरह फूटी पड़ती थी। उसके सुगठित अंग प्रत्यंग और सुन्दर मुख मंडल से लावण्य उछला पड़ता था। असमय राजा को आया देखकर वे दोनों कुछ घबड़ा गईं। विशेषकर राजा को रणसाज से सज्जित देखकर वे कुछ सशंकित भी हुईं। रानी ने पूछा—"रणवेश में असमय आप का क्योंकर आगमन हुआ?"

राजा ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"क्या विपत्ति का हाल तुम्हे अभी तक मालूम नहीं हुआ?"

राज कन्या बोली—"क्या हुआ पिता जी?"

"और क्या होगा? सर्वनाश उपस्थित है, सभासिंह मेरा सर्बस्व हरण के लिये बड़ी भारी सेना लेकर वर्द्वान के पास पहुंच गया है। पठान सरदार रहीमखां ने भी उसका साथ दिया है।"

रानी बोल उठी—"यह क्या तुम उनसे लड़ने के लिये जा रहे हो?"

"तुम्हे क्या जान पड़ता है?"

"मुझे भी तो यही जान पड़ता है, किंतु इस अवस्था में ऐसे भयानक शत्रु के सम्मुख जाना क्या अच्छा होगा ?"

राजा ठठा कर हँस पड़े। राज-कन्या बोली—

"क्यों नहीं माँ ! पिता तो इस समय भी बाघ के साथ लड़ सकते हैं, फिर मनुष्यों के सामने क्यों नहीं जा सकते ?"

"बहुत ठीक" कह कर राजा ने पुत्री के मस्तक पर आशा-व्यंजक हाथ रख दिया। इसके बाद कहने लगे—"मुझे केवल तुम्हारा ही भय था, अब वह भय जाता रहा।"

"क्यों पिता जी, मेरे लिये क्या भय था ?"

"तुम आत्म-रक्षा कर सकोगी या नही, इसी बात की चिन्ता मे था।"

रानी बोली—"तुम लोग ये कैसी बाते मुँह से निकाल रहे हो ? क्या भगवान हम लोगो के प्रति इतने निर्दय हो जाँयगे कि हम लोगो को आत्म-रक्षा के लिये प्रस्तुत होना पड़ेगा ?"

"रानी ! भविष्य की बात कौन जानता है ? पहले से ही सावधान हो जाना क्या अच्छा न होगा ? मै युद्ध-क्षेत्र मे जा रहा हूँ, लौट कर आ सकूँगा या नहीं, कौन कह सकता है ? इसी से तुम लोगो को आत्म-रक्षा के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये।"

राजकन्या बोल उठी—"पिता जी ! आप जरा भी चिन्तित न हों। क्षत्राणियाँ आत्म-रक्षा करना खूब जानती हैं।"

"तो यह लो," कह कर राजा ने कमर के नीचे से एक तेज

छुरिका बाहर कर कन्या के हाथ में दी और उसे कोष से बाहर कर दिया। राजकन्या ने उसे पुनः कोष में डाल कर उसे सावधानी से रख लिया।

राजा ने कन्या को सम्बोधन करके कहा—

"तुम्हारे हाथ में छुरिका किस लिये दी, समझी है न?"

"समझ गई हूँ पिता जी, आत्म-रक्षा के लिये।"

"केवल इसी के लिये नहीं, ईश्वर न करे, पर यदि मैं लौट कर न आऊँ तो आशा है, उस समय यह छुरिका प्रतिशोध लेने से बाज़ न आयेगी।"

रानी डर कर बोल उठी—"यह क्या कह रहे हो? मेरी दुध-मुँही बच्ची छूरी लेकर क्या करेगी?"

"इसे तुम्हारी दुधमुँही लड़की समझ गई है। मैं अपने पुत्र से इस लड़की को ही अधिक उपयुक्त समझता हूँ।"

सहसा कुछ दूरी पर रण-भेरी बज उठी। राजा बोले—"रानी, तो मैं चला, जान पड़ता है, यही अंतिम भेंट है" यह कह कर कृष्णराम ने फुर्ती से कदम बढ़ाया। रानी कुछ देर तक स्तम्भित रही। इसके बाद कन्या से बोलीं—

"क्या सचमुच हम लोगों के बुरे दिन आ गये?"

"क्या कहूँ माँ! पिता जी ने जो कुछ कहा है, उस से हम लोगों का भविष्य अन्धकार-मय ही जान पड़ता है!"

"राजा क्या सचमुच नहीं लौटेंगे?"

"नहीं जानती माँ भाग्य में क्या है ... ने कौन सा उपाय है,

"बेटा तो बच जायगा। तुम्हारे लि... के साथ ने इसके

यही सोच रही हूँ।"

"इसके लिये तुम्हे सोच न करना पड़ेगा। पिता जी ... लिये उपाय बतला दिया है" यह कह कर राजकुमारी ... उस शोणित छुरिका को देखने लगी। रानी उस छुरिका को ... सिहर उठी। राजकुमारी ने उसे पुनः कोष में रख दिया।

[३]

बर्दवान के दक्षिण मे बाँका नामक एक छोटी सी नदी ... गति से बहती है। सभासिंह ने अपने भाई हिम्मतसिंह को ... बाँका को पार करने का आदेश देकर रहीम खाँ के साथ ... सेना लेकर नदी को पार किया। उनके साथ घुड़-सवार सेना ... थी। जिस समय वे बाँका के दूसरे पार थे, उस समय दूत ... राजा कृष्ण को खबर दी थी। इतनी जल्दी में राजा भी अधि... सेना न एकत्रित कर सके। जिस समय विपक्षदल बाँका ... पार कर के अग्रसर हो रहा था, उसी समय कोतवाल की ... ध्वनि से राजा की सारी सेना शत्रु सेना की गति ... । पर ... लिये प्रस्तुत हुई। राजा कृष्णराम भी शीघ्र ही ... । और थोड़ी सी सेना राजपुरी की रक्षा के लिये भेज दी ... रहीम

राजा के सैनिकों को आया हुआ देखकर सभासिंह ... स्थित से सलाह करने लगे। हिम्मतसिंह भी उस स्थान पर ७

सभासिंह बोले—"शत्रु सेना पर किस तरह से आक्रमण किया जाय ?"

रहीम खाँ ने उत्तर दिया—"इस मुट्ठी भर सेना के लिये आप क्या चिन्ता कर रहे हैं ? यह तो एक फूँक में जहाँ की तहाँ उड़ जायगी।"

"ऐसा होने पर भी कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा !"

हिम्मतसिंह बोले—"आप निश्चिन्त रहें; मैं अकेले ही उन्हें धराशायी करता हूँ !"

सभासिंह बोले—"अच्छा, आप ही आगे बढ़िये, हम लोग पीछे रहते हैं।"

रहीम बोले—"अच्छी बात है, हिम्मत आगे रहे, उनके पीछे मै और मेरे पीछे आप रहें।"

"बहुत ठीक" कह कर सभासिंह ने सैनिको को तीन टुकड़ी मे विभक्त किया। राजा की सेना से पहले दो एक गोली हिम्मतसिंह की सेना में पड़ने लगी। उस समय हिम्मतसिंह के सैनिक भी गोली बरसाने लगे। इसी समय पीछे से रहीम खाँ भी अग्रसर होकर हिम्मतसिंह मे जा मिला। इनके सिपाही भी खूब गोली बरसाने लगे। राजा के सैनिक कटे हुए केले की तरह ज़मीन पर गिरने लगे। बाकी सैनिक भयभीत हो भागने के लिये मौक़ा देखने लगे। अब घोड़े की पीठ पर राजाकृष्ण अग्रसर होकर स्वयं गोली बरसाने लगे। वह युवकों की तरह उत्साह

के साथ शत्रु की गति को रोकने में प्रवृत्त हुए। राजा के उत्साह को देखकर उनके अल्प संख्यक सैनिक दुगुने पराक्रम से गोली बरसाने लगे। पीछे से कोतवाल उन्हे उत्साहित करने लगा। विपक्ष दल के सैनिक भी धराशायी होने लगे। इस प्रकार राजा उत्साह के साथ युद्ध कर रहे थे। इतने में सभा सिह की एक गोली आकर उनके ललाट में लगी, राजा घोड़े की पीठ से ज़मीन पर गिर पड़े। उनके ज़मीन पर गिरते ही उनकी सेना में भगदर मच गई। कोतवाल उन्हें रोक न सके। शत्रु सेना जयजयकार करती हुई आगे बढ़ी।

इस बार शत्रु सेना राजपुरी की ओर बढ़ी। कोतवाल मुश्किल से कुछ सैनिकों को इकट्ठा कर प्रासाद के सामने खड़ा हुआ। वहाँ पर पहले से भी कुछ सैनिक खड़े थे। कोतवाल को पुनः लड़ने के लिये तैयार देखकर विपक्षदल गोलियों की तीक्ष्ण वर्षा करने लगा। किन्तु कोतवाल इससे कुछ भी हतोत्साह न हुआ। उसने सैनिकों को गोली छोड़ने का आदेश दिया। वे वर्षा की बौछार की तरह गोली छोड़ने लगे। कोतवाल स्वयं इसमें प्रवृत्त हुआ। विपक्ष दल दुगुने साहस के साथ आगे बढ़ कर गोली बरसाने लगा। राजा के अधिकांश सैनिक धराशायी हुए। बाक़ी सैनिकों ने भागकर किसी तरह आत्म-रक्षा की। कोतवाल भी छाती मे गोली खाकर ज़मीन पर गिर पड़ा। स्वामी के कार्य के लिये उसने अपने प्राणो की बाज़ी लगा दी।

राज-महल का फाटक भीतर से बन्द था। विजयी सेना के आघात से झन झन शब्द से द्वार टूट गया। सैनिकों ने फुर्ती से राजमहल में प्रवेश कर लूट-पाट करना आरंभ कर दिया। कुछ सिपाहियों के साथ सभासिंह ने राजा के अन्तःपुर में प्रवेश किया। वह कमरे कमरे में ढूँढता हुआ जहाँ पर रानी और राज-कन्या थी, वहीं पहुंच गया। वे दोनों युद्ध का सारा हाल पहले ही से सुन चुकी थीं। रानी शोक से ज़मीन पर लोट कर रो रही थी। किन्तु राज-कन्या शोक और दुख से क्षुब्ध हो पिता की हत्या करने वाले से बदला लेने की तरकीब सोच रही थी। राजकन्या के अनुपम रूप-लावण्य को देखकर सभासिंह के चित्त में एक प्रबल तूफ़ान उठा। बहुत मुश्किल से चित्त के वेग को रोककर वह वहाँ से हटा। वह जब तक वहाँ पर रहा, रानी आर्तनाद से कमरे को विदीर्ण करती रही, किन्तु राज-कुमारी बीच बीच में उस छुरिका को स्पर्श कर रही थी। सभासिंह ने कुछ सैनिकों को अन्तःपुर का पहरेदार नियुक्त कर उनमें से एक प्रधान सैनिक को आदेश दिया कि राजकुमारी और रानी को भिन्न-भिन्न कमरे मे बन्दी करो। इसके बाद उसने कमरे से निकल कर नगर मे प्रवेश किया। उसके जाने के कुछ देर के बाद ही वह प्रधान सैनिक रानी के कमरे में आकर बोला—"राजकुमारी, आप इधर आइये।"

"बहुत अच्छा" कह कर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। रानी चिल्लाती हुई बोली—"मेरी-दुध मुही लड़की को कहाँ लिये जाते

हो ?" सैनिक ने उत्तर दिया, "इनके लिये आप कोई चिन्ता न करें।"

रानी उसे न सुनकर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। राजकन्या निःशंक चित्त से सैनिक से बोली—"कहाँ, चलना होगा, चलो।" "आइये" कहकर सैनिक अग्रसर हुआ, राजकुमारी भी उसके पीछे पीछे चलने लगी। सैनिक ने उन्हे एक स्वतंत्र स्थान में रहने के लिये कह कर उनकी सेवा के लिये कुछ दासियो को नियुक्त कर दिया। किन्तु कुछ पहरेदार भी नियुक्त कर दिये जिससे रानी के साथ बातचीत करने का उपाय न रह गया। रानी के कमरे में भी दासियाँ तथा पहरेदार नियुक्त हुए। इस प्रकार समूचे अन्तः-पुर और प्रासाद में पहरेदार नियुक्त हो गये।

[४]

बर्दवान के राज-महल के एक छोटे कमरे मे एक क्षीण प्रदीप जल रहा था। चंचल दीप-शिखा अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर रही थी। कभी अधिक जल उठती थी और कभी क्षीण हो जाती थी। कभी कभी हिलती डुलती हुई नाचने लगती थी। प्रदीप के पास ही गलीचे पर लेटी हुई एक स्त्री की प्रतिमा विराज रही थी। सामने एक पलंग पर शैया रखी हुई थी। उस रमणी को देखने पर जान पड़ता था, मानों उसके अनुपम लावण्य से ही दीप शिखा म्लान हो गयी है। किन्तु उस लावण्य में मानो कालिमा की एक रेखा पड़ी थी। उसके मुख मण्डल से चिन्ता के लक्षण दिखाई

पड़ रहे थे। रमणी मन ही मन सोचती हुई कह रही थी, "बहुत दिन हो गये, पर प्रतिशोध लिया नहीं जा सका। मौका ही नहीं मिलता।" फिर मानो उसके हृदय मे प्रबल चिन्ता का स्रोत बहने लगा। कुछ देर के बाद वह हँस कर बोली—"पापिनी दासी कहती है कि सभासिंह मुझे व्याह कर रानी बनाना चाहता है! जो पिता की हत्या करने वाला है, उसका पाणि-स्पर्श तो दूर, छाया-स्पर्श तक महापातक है। मैं उसका अंग-स्पर्श न करूंगी, वही करूंगी जो मेरे दिल में है। रण-चण्डिके! हृदय में बल दो।" यह कह कर उस रमणी ने वस्त्र में से एक कोष में रखी हुई छुरिका निकाली और उसे कोष से बाहर कर ली। शाणित छुरिका दीवालों, में झक झक कर उठी। इसी समय बाहर पद-शब्द सुनाई पड़ा। इससे उसने छुरिका को कोष में रख कर वस्त्र मे छिपा लिया। साथ ही एक स्त्री ने घर में प्रवेश किया। पहली स्त्री ने दूसरी स्त्री से कहा—

"फिर कौन सी ख़बर लाई हो?"

"गुस्सा न हो तो कहूं।"

"निडर होकर कहो, किसी प्रकार की बाधा नहीं है।

"राजा सभासिंह आज यहां पर आये हैं।"

यह सुनते ही पहली रमणी गलीचे के ऊपर उठ बैठी, दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—"डरिये मत, वह अन्तःपुर में ही आये हैं।"

"मुझे क्या करने के लिये कहती हो?"

" आप से तो कई वार कह चुकी हूँ ।"

" क्या सभासिंह मुझ से विवाह करना चाहते हैं ? क्या विवाह इसी समय होगा ?" यह कह कर वह रमणी ठठा कर हँस पड़ी ।

" आप भविष्य में सुख पूर्वक रहेंगी, इसी से मैं वार वार आप से अनुरोध करती हूँ । "

"अगर फिर जुवान से ऐसी बात कही तो मारे लात-घूँसों के तेरा मुँह फोड़ डालूंगी । "

दूसरी रमणी मामला गड़बड़ देख कर वहां से चलने का उद्योग करने लगी । जाने के समय वोली—"आप तो ऐसे गुस्से में भर जाती हैं, कि मै सारी बाते कहने भी नहीं पाती ।"

" अच्छा, जो तुम्हे कहना है, कहो ।"

" यदि आप को आपत्ति न हो तो राजा एक वार आप से मुलाकात करना चाहते हैं ।"

रमणी सुनकर पहले तो कुछ चौंक पड़ी फिर कुछ सोचकर बोली " अच्छा, वे भेट कर सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नही है । अच्छी बात है, उन्ही से सारी बाते सुनूँगी ।"

"अच्छा, तो मैं उन्हे खबर देती हूँ" कहकर दूसरी स्त्री चली गई । पाठक, समझ गये होगे, ये दोनो स्त्रियाँ कौन हैं ?

सभासिंह ने जब से राज-कुमारी को देखा था तब से वह उसे पाने के लिये अधीर हो रहा था । यद्यपि वर्द्दवान पर अधिकार

जमाने के वाद उसे कई स्थानों मे लड़ाई के लिये जाना पड़ा, किन्तु उसका चित्त तो राजकुमारी के पास था। वह रहीम को मुर्शिदावाद भेजकर स्वयं वर्दवान लौट आया। वर्दवान आने पर उसने राजकुमारी पर नियुक्त दासियों के मुँह से उसका समस्त वृतान्त सुना। राजकुमारी उससे घृणा करती है, इसे सुन कर उसके चित्त में अत्यन्त व्यथा हुई। किन्तु वह अपने हृदय के आवेग को किसी प्रकार रोक न सका। यद्यपि कभी कभी राजकुमारी के प्रति उसके हृदय में क्रोध का भाव पैदा होता था; किन्तु दूसरे ही क्षण उस कमनीय मूर्ति को स्मरण कर वह अधीर हो उठता था। जब किसी प्रकार वह अपने चित्त को न रोक सका। तो उसने स्वयं राज-कुमारी से मिलकर उनसे सारा हाल कहने की इच्छा की। इसी से परिचारिका के द्वारा राज-कुमारी के पास उसने संवाद भेजा। दासी राजकुमारी के यहाँ से वापस आकर सभासिंह के पास आई। सभासिंह ने पूछा—आज कैसा देखा ?"

"रोज जैसा देखती हूँ वैसा ही आज भी देखा।"

"किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं देखा ?"

"कुछ परिवर्तन नहीं देखा।"

"तो जान पड़ता है, मेरी वात न कह सकी हो ?"

"नहीं, कहा है।"

"कुछ जवाव भी दिया है।"

"हाँ, दिया है।"

"क्या ?"

"आप से भेंट करने के लिये कहा है ।"

सभासिंह परिचारिका के मुँह से अन्तिम बात सुनकर आनन्द से अधीर हो उठा। उसने इनाम में कई मुहरे फेंक दीं। दासी उसे कमरे के दरवाजे के पास तक पहुंचा कर चली आई। सभासिंह ने कमरे में प्रवेश किया। कमरे में पैर रखते ही वह कुछ चौंक पड़ा क्योकि जिस प्रतिमा की वह मन ही मन पूजा कर रहा था, वह मानो नहीं है। राजकुमारी देखने में क्रोध मे भरी सर्पिणी की तरह जान पड़ती थी। वह नाना प्रकार की विभीषिकायें देखने लगा। उसके मन मे ऐसा जान पड़ने लगा मानो मृत्यु चारो तरफ से उनकी ओर देख रही है। थोड़ी ही देर के बाद उस भाव के दूर होने पर वह निर्निमेष नेत्रों से राजकुमारी के रूप लावण्य को देखने लगा। क्रमशः उसके चित्त मे अनेक प्रकार के भाव उठने लगे। राजकन्या निश्चल प्रतिमा की तरह गलीचे पर बैठी हुई थी। उस नीरव गृह मे क्षीण दीप शिखा बीच बीच मे हँस उठती थी। सभासिंह पहले नीरव को भंग करके बोला—

"राजकुमारी, तुम्हारा दास तुम्हारी सेवा मे उपस्थित हुआ है।"

राजकुमारी ने उत्तर दिया—

दिग्विजयी वीर भी किसी की दासता स्वीकार करते है ?

"उपयुक्त स्वामी पाने पर दिग्विजयी वीर भी मस्तक झुका देते हैं।"

"और मौका पाने पर प्रभु-हत्या करने से भी बाज़ नहीं आते।"

"कौन प्रभु, कृष्णराम राय?" कहते कहते सभासिंह का मुख मण्डल लाल हो उठा।

"किसी के नाम की आवश्यकता नहीं," कह कर राज्यकन्या ने उत्तर दिया।

"इस समय दास को क्या आज्ञा है?"

"आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आता?"

"क्या आपको अभी तक मेरी बात समझ में नहीं आई?"

"सचमुच, आप की बात मेरी समझ में नही आती।"

"जिस रूप शिखा ने हृदय में आग जला रखी है उसे एकबार स्पर्श करना चाहता हूँ।"

"अग्निस्पर्श करने से क्या होता है, उसे आप नही जानते हैं क्या?"

"यदि जलना ही होगा तो अच्छी तरह से जल मरूँगा।" यह कह कर सभासिंह बाँह पसार राजकन्या की ओर अग्रसर हुआ। राजकन्या गलीचे के ऊपर बैठी थी, वह सहसा उठ खड़ी हुई और कहने लगी "ख़बरदार, और अधिक आगे न बढ़ो, पिता का हत्या करने वाले की छाया मेरे अंग को स्पर्श न करने पावे।"

सभासिंह का मुँह क्रोध से लाल हो गया, किन्तु उस समय भी उसके हृदय में कामवासना प्रज्वलित हो रही थी, उसकी इन्द्रिय लालसा ने उसे हिताहित-ज्ञान से यहाँ तक शून्य कर दिया था

कि वह दोनों हाथ पसार कर राज-कन्या को पकड़ने के लिये कुछ आगे बढ़ा। "कामी कुत्ते, अब भी तुम्हें सावधान किए देती हूँ" कहकर वह कुछ पीछे हट गई। वह बोल उठा—"यह कौन बड़ी बात है, बलपूर्वक तुम्हारा अंग-स्पर्श करूँगा।" यह कहकर नरपिशाच राजकन्या के अंग स्पर्श करने के लिये उद्यत हुआ। क्षण भर में राजकुमारी ने वस्त्र में छिपाई हुई खुली हुई छुरिका को बाहर करके "पिता की हत्या का यही प्रतिशोध है" कहकर सभासिंह के वक्षस्थल में उसे घुसेड़ दिया। "राक्षसी, यह क्या किया?" कहते हुए सभासिंह मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

कमरे के बाहर से 'सर्वनाश हो गया' 'सर्वनाश हो गया' इस प्रकार चिल्लाते हुए हिम्मत सिंह और दूसरे सैनिकों ने कमरे मे प्रवेश किया। दरवाजे पर पहुंचते न पहुंचते राजकुमारी ने उस रुधिर से भरी हुई छूरिका को अपने वक्षस्थल मे भी घुसेड़ लिया। "पिता, प्रतिशोध ले लिया, चरणों में स्थान दो।" यह कहती हुई वह बेहोश होकर गिर पड़ी। उसकी बेहोशी क्षण भर के लिये भी दूर न हुई।

---

(९) मातृ-भक्त

सन् १८७० ई० में जर्मनों ने फ्रांस की राजधानी पेरिस नगर को घेर लिया था। जब वे पेरिस को छोड़कर चले गये तो कुछ दिनो के बाद ही वहा पर विद्रोह फैल गया। कम्यून नामक एक दल ने विद्रोही बनकर प्रजापक्ष के लोगों के विरुद्ध अस्त्रधारण किया। अन्त में कम्यून दल वालो की पराजय हुई और उनमें बहुत से गिरफ़ार कर लिये गये। गिरफ़ार किये हुए लोगो को गोली मार देने का हुक्म हुआ। इस आदेश को कार्यरूप में परिणत करने का भार जिस सेनापति को दिया गया, वह कैदियो में से एक एक को बाहर बुलवाकर गोली मारने लगा। कैदियों को जिस समय बाहर निकाला गया, उस समय देखा गया कि उनमें एक पन्द्रह वर्ष का बालक भी है। वह बालक सब से छोटा था। उस बालक के तरुण मुख और निर्दोष सरल भाव को देखकर सेनापति के मन मे दया का भाव पैदा हुआ। उसने उस बालक के सम्बन्ध मे विशेष पूछतांछ और जाँच करने, और संभव हो तो उसे छोड़ देने के इरादे से उसे और सब कैदियों से अलग रखने का आदेश दिया।

वह बालक खड़ा होकर अपने साथियो को मृत्यु का शिकार होते देखने लगा और साथ ही प्रतिक्षण अपनी मृत्यु की भी इन्तज़ारी करने लगा। उसके भाव देखने पर ऐसा जान पड़ता था कि वह

उस भीषण दृश्य को देखकर जरा भी भयभीत नहीं हो रहा है, वरन् वीरों की तरह स्थिर और निश्चिंत होकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। उसका यह भाव देखकर सेनापति के मन में आश्चर्य पैदा हुआ।

अन्त में जब उसकी बारी आई तो सेनापति ने उसे सामने बुलाकर कहा—"अब तुम्हारी बारी है। तुम क्या कहते हो?"

बालक ने कहा—मुझे भी गोली मार दो, मैं तैयार हूँ।

सेनापति—क्या तुम तैयार हो?

बालक—हां, मैं तैयार हूँ।

सेनापति—क्या तुम मृत्यु को नहीं डरते?

बालक—गत छः मास से जो कुछ देख रहा हूँ, उससे तो जीने की अपेक्षा मरना ही भला है।

सेनापति—प्यारे बच्चे! तुम्हारा नाम क्या है?

बालक—मेरा नाम विक्टर है।

सेनापति—तुम्हारा रक्षक कौन है?

बालक—मेरी माँ है।

सेनापति—पिता नहीं है?

बालक—पिता स्वर्गलोक में है। उन्होंने स्वदेश के लिये लड़कर प्राण दे दिये।

सेनापति—अच्छा, यदि तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे?

विक्टर—मैं एकबारगी छोड़ देने के लिये नहीं कहता। जब सभी मर गये तो मैं क्यों न मरूं? हां, यदि आप एक घण्टे के लिये मुझे छोड़ देंगे तो मैं एक बार अपनी माँ को देख आऊँगा। मालूम होता है कि आप के भी माँ हैं। वह आपको अवश्य प्यार करती हैं। मरने के समय माता की बात किस प्रकार मन में आती है, इसे, जान पडता है, आप समझते हैं। मेरी माँ के और कोई नहीं। वह बहुत सख्त बीमार है। एक घण्टे की छुट्टी देने से मैं एक बार उसे देख आ सकता हूँ।

सेनापति—छोड़ देने पर तुम फिर वापस चले आओगे, इसके लिये प्रमाण क्या है?

विक्टर—मैं अपनी बात दिये जाता हूँ। सच बात से क्या जीवन बढ़कर है?

विक्टर ने इन बातों को इस भाव से कहा कि सेनापति के मन में ऐसा भाव पैदा हुआ कि उसे छाती से लगा लूँ। किन्तु वे उस भाव को छिपाकर बोले—"अच्छा जाओ। तुम्हें एक घण्टे की फुरसत दी जाती है।"

विक्टर सेनापति को सलाम करके घर की ओर चल पड़ा। उसका घर वहाँ से एक मील की दूरी पर था। वह जल्दी जल्दी घर का दरवाजा खटखटाने लगा। उस समय, रात्रि में, ९ के लगभग बज रहे थे। दरवाजा खटखटाने पर पड़ोस की ही एक स्त्री ने आकर दरवाजा खोल दिया। यह स्त्री बालक की माँ की

सेवा-शुश्रूषा करने के लिये नियुक्त थी। विक्टर दबे पाँव माता की शय्या के पास ज्यों ही पहुँचा, त्यों ही माँ अचकचा कर उसे देखने लगी और "मेरा विक्टर, मेरा सर्वस्व, मेरा जवाहर, तू आगया" कहकर उसने उन कमज़ोर हाथों से उसे आलिंगन करके छाती से लगा लिया।

विक्टर माता की शय्या के बग़ल में बैठकर तकिये से मुँह छिपाकर बच्चों की नांईं रो पड़ा।

दुखिया माता विक्टर को एकदम छुटकारा पाया हुआ जानकर कहने लगी—"अब मुझे छोड़कर न जाना; सिपाहियो के इस घृणित वेश को छोड़ दो। तुम कारबारी लड़के हो। अपना काम-धंधा देखो, रुपये कमाओ। समय पाकर एक बहू ब्याहकर घर में लाना जिससे तुमको और मुझे सुख होगा।"

इन बातों को सुनकर विक्टर की मानो छाती फटने लगी। माता के बोलते रहने से वह असली बात भी न कह सका। इतने में माता को फिर नींद आगई।

माता के सो जाने पर विक्टर ने सोचा कि मुझे जाना तो आवश्यक है ही, तो क्यो न माता के जागने के पहले ही चल पड़ूँ। यह सोचकर सोती हुई माता का मुँह चूमकर फिर चल दिया।

वापस आकर सेनापति को सलाम करके बोला—"लीजिये, मैं आगया। अब मुझे गोली मार दीजिये। अब अधिक विलम्ब

। कीजिये ।" सेनापति ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"तुम इतनी ल्दी किस प्रकार आये ?"

विक्टर—"माँ रोती रोती सो गई ! तब मैंने सोचा कि जागने पर मेरा आना कठिन हो जायगा। इसलिये जल्दी चला आया।"

यह सुनकर सेनापति की आँखों में आंसू आगये। वह बोले—प्यारे बच्चे ! तुम कम्यून दल की ओर से युद्ध करने के लिए क्यों गये थे ?"

विक्टर—मेरे साथ के लोगो ने कहा था कि मेरी अवस्था बन्दूक पकड़ने के योग्य हो गई। यदि मैं उस दल में न जाऊँगा तो गोली से मार दिया जाऊँगा, और यदि जाऊँगा तो हर रोज दो रुपये के हिसाब से वेतन पाऊँगा। मैंने सोचा कि ख़ैर यही सही। मेरे पिता नहीं हैं। इस प्रकार मैं अपनी माता का प्रतिपालन तो कर सकूँगा।

बालक की बात को सुनकर सेनापति आँसुओं को न रोक सके। बोले—"विक्टर, आओ तुझे छाती से लगा लूँ। मै तुझे छोड़े देता हूँ। तुम अपनी माँ के पास जाओ। अपनी माँ को सदा प्यार करना।"

इस आज्ञा को सुनकर विक्टर को यह भी न जान पड़ा कि मैं कहाँ हूँ। वह सेनापति से बोला—"मेरी माँ, आपको अनेकों आशीर्वाद देंगी। आपने मेरे पिता का काम किया। अच्छा,

अब मैं चलता हूँ। क्योंकि माँ की नींद टूटने के पहले ही पहुँचना ठीक होगा ?

यह कह कर उस विधवा का सत्यवादी, मातृभक्त और साहसी बालक एक साँस से घर की ओर दौड़ पड़ा।

---

(१०) वीरांगना

इलाहाबाद से लगभग एक सौ कोस दक्षिण-पश्चिम के कोने में गढ़मंडल नामक एक राज्य था। छत्तीसगढ़ से सम्बलपुर आदि कई एक जनपद से यह राज्य गठित हुआ है। सम्बलपुर से पाँच मील की दूरी पर पवित्र जलवाली नर्मदा के दाहने किनारे गढ़मंडल की राजधानी गढ़नगर स्थित था। जिस समय सारे भारतवर्ष पर मुग़लों की जय-पताका फहरा रही थी, उस समय भी गढ़मंडल अपनी स्वाधीनता अक्षुण्ण रक्खे हुए था।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस समय अकबर भारत के छोटे छोटे राज्यों को मुग़ल-साम्राज्य में मिलाने के लिए कटिबद्ध हो रहा था, उस समय गढ़मंडल पुण्यशालिनी रानी दुर्गावती की असाधारण तेजस्विता और बुद्धिमता के ऊपर निर्भर रहकर प्रबल प्रतापी मुग़ल सम्राट के सामने अपने आत्मगौरव की रक्षा करने के लिए प्रयत्नशील था। उस समय दलपतिशाह इस राज्य का राजा था।

दुर्गावती 'महोबा के क्षत्रिय राजा की कन्या थी। किम्वदन्ती

सुनने में आती है कि वह उस समय अद्वितीय सुन्दरी
और गुणवती थी। दलपतिशाह ने उस असाधारण रूपवती
कुमारी से ब्याह करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु दुर्गावती
के पिता ने अपनी वंश-मर्य्यादा का ख्याल करके इस विवाह
सम्बन्ध को स्वीकार न किया। उधर दुर्गावती भी वीर दलपतिशाह
के असाधारण गुणों पर मुग्ध हो गई थी, किन्तु पिता की सम्मति
न होने के कारण अपनी अभिलाषा पूरी नहीं कर सकती थी।
जब दलपतिशाह को इस राजपूत रमणी के प्रेम-भाव का पता चला
तो उसने उससे विवाह करने का दृढ़ संकल्प कर लिया और बहुत
जल्द बहुत से सैनिक लेकर महोबा राज्य पर आक्रमण कर
दिया। दोनों दलों में घोर संग्राम हुआ। दलपतिशाह विजयी हुए
और दुर्गावती का पाणिग्रहण कर उसे साथ लेकर धूमधाम से
राजधानी को लौट आये। दोनों अपने अभिलषित धन को पाकर
अत्यन्त आनन्द और सुख-शान्ति का उपभोग करने लगे।

किन्तु दुर्गावती के भाग्य में इतना सुख और ऐश्वर्य भोगना
बदा न था। विवाह होने के पाँच वर्ष बाद दलपतिशाह एक पुत्र
छोड़कर स्वर्गवासी हुए। विधवा रानी अधारसिंह नामक एक
प्रभु-भक्त और विचारशील मंत्री की सहायता से शिशु राजकुमार
नारायण के नाम से राज्य का शासन करने लगी। गढ़मण्डल
की प्रजा रानी के सुशासन से बहुत संतुष्ट हुई और शीघ्र उनका
यश चारों ओर छा गया।

उस समय मुगल बादशाह अकबर राज्य-विस्तार की इच्छा से स्थान-स्थान पर छावनी कायम करके चतुर सेनापतियों को उसके शासन और रक्षा का भार दे देता था। नर्मदा के किनारे गढ़-मंडल से थोड़ी ही दूर पर एक छावनी कायम हुई और आसफ-खाँ नामक एक दुष्ट प्रकृति का सेनानायक वहाँ भेजा गया। गढ़राज्य की शोभा और समृद्धि ने आसफखां को विचलित कर दिया। वह उसे कब्जे में करने के लिए सेना के साथ अग्रसर हुआ। इधर असाधारण बलशालिनी रानी दुर्गावती भी निश्चिन्त न थी। वह दूत के मुँह से इस सम्वाद को सुनते ही निर्भीकता के साथ सेना एकत्रित करने लगी। इस तेजस्वी वीरांगना की उत्साह भरी बातों से उत्साहित होकर सैनिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए दुगुने बल से लड़ने लगे। सत्रह वर्ष का कुमार वीरनारायण एक सेना-दल लेकर जन्म-भूमि की गौरव-रक्षा के लिए शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा। वीरांगना दुर्गावती भी युद्ध के लिए सुसज्जित हुई। जिन कोमल हाथों में मणिमय वलय धारण किये हुई थी, उनमे तलवार और धनुष-बाण धारण किया—कोमल अंग में कठिन वर्म्म धारण किया। रमणी का हृदय स्वदेश के सम्मान को अक्षुराण रखने के लिये उत्साह से भर गया।

प्रबल प्रतापी मुगल सेना इस वीरांगना के समर-कौशल से दो बार परास्त हुई। सन्ध्या के समय रानी दुर्गावती ने अपने

सैनिकों को विश्राम करने का आदेश दिया। यह विश्राम ही गढ़मण्डल के लिये काल हुआ। रात के समय, जब क्षत्रिय सैनिक बेखटके शान्ति की गोद में सोये हुए थे, क्रूर आसफ़ख़ाँ ने सहसा उनपर आक्रमण कर दिया। ऐसी अवस्था में आक्रान्त होने पर राजपूत सैनिक घबड़ा उठे। इस युद्ध में दुर्गावती के कलेजे का टुकड़ा—वीर नारायण—सोते हुए ही मारा गया। किन्तु ऐसी दुःखप्रद घटना से भी रानी का वीर हृदय विचलित न हुआ बल्कि पुत्र-शोक में वह दुगुने उत्साह से उस शत्रु-सेना का संहार करने लगीं। उसके बाणों की बौछार और असि-संचालन से मुगल सेना गाजर-मूली की तरह कटने लगी। इतने में आसफ़ख़ाँ के छोड़े हुए दो तीर आकर दुर्गावती के नेत्रों मे आकर विंध गये। उन्हे आखो से उन तीरों के निकालने तक का समय न मिला। यद्यपि रुधिर के स्रोत से उनका शरीर तर होने लगा था, तथापि वह न टली। दुगुने तेज के साथ वह अपनी सेना को उत्साहित करने लगी किन्तु और अधिक काल तक उन्हे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर न मिला। एक और बाण आकर उनकी गर्दन में घुस गया। आकाश मे गिरनेवाले तारे की तरह वह हाथी की पीठ पर से ज़मीन पर गिर पड़ी। स्वाधीनता की रक्षा के लिए राजपूत वीरांगना ने युद्ध-भूमि मे प्राण-विसर्ज्जन कर दिये।

गढ़मण्डल की स्वाधीनता का सूर्य्य सदा के लिये अस्त हो

गया। आसफखां ने उक्त राज्य को अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु इस वीर नारी की असाधारण कीर्ति गढ़मण्डल के इतिहास में चिरकाल के लिये स्वर्णाक्षरों में लिखी है।

जिस स्थान पर दुर्गावती ने अन्तिम साँस ली थी, वह एक गिरि-संकट है। आज भी वहां पर गोलाकार दो खण्ड का पत्थर देखने में आता है। वहाँ पर एक जन-श्रुति सुनने में आती है कि रानी की लड़ाई के दोनों नगर शिला-खण्ड के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।

गढ़मण्डल इस समय शोभा और ऐश्वर्य से हीन है, उसका पूर्व गौरव अनन्त काल के गर्भ में विलीन हो गया है। किन्तु दुर्गावती की वीरता की कहानी और उसकी देशभक्ति आज भी भारत वासी भूले नहीं हैं। इस पृथ्वी में जब तक स्वाधीनता का सम्मान रहेगा, तब तक वीरांगना दुर्गावती की पवित्र कीर्ति, असाधारण तेजस्विता और अलौकिक आत्मत्याग की कहानी भारतीय इतिहास के पृष्ठों में गूँजती रहेगी और 'दुर्गावती' का नाम इन स्मृतियों को हमारे दृष्टिपथ के समक्ष उपस्थित कर हमें अमर जीवन का सन्देश देता रहेगा।

---

(११) खावला

हज़रत मुहम्मद साहब ने अरब वासियों में नवीन जीवन का संचार किया था। अरब के रहनेवाले पहले बिल्कुल जंगली और बर्बर थे। आपस से सदा लड़ाई-झगड़ा किया करते थे। यह मुहम्मद साहब ही का काम था, जिन्होंने उन्हें एकता-सूत्र में आबद्ध करके विजेता बना दिया। जिस समय अरब-निवासी क़िले पर किले जीत कर देश पर देश अपने अधिकार में कर रहे थे, उस समय उन योद्धाओं के साथ उनकी मातायें, बहनें और स्त्रियाँ भी युद्ध-भूमि में जाकर शत्रु का सामना करती थीं। इन रमणियों में खावला नामक एक अरब रमणी की वीरता इतिहास-प्रसिद्ध है। उसी की कहानी यहाँ पर दी जाती है।

हिजरी की पहली शताब्दी में प्रथम खलीफा अबूबाकर सिद्दीक ने सिरिया देश जीतने के लिये एक प्रबल सेना भेजी। उन वीरों की मातायें, बहनें तथा सहधर्मिणियाँ भी उनके साथ साथ गईं। बयतुलहयात युद्ध में वीर जेरार शत्रु के द्वारा पकड़ लिये गये।

अरब-सेनापति महावीर खालेद शत्रु के हाथ से जेरार का उद्धार करने के लिये दौड़े। उन्होंने देखा कि वह सेना के आगे लम्बे डील डौल वाला ज़िरह बख्तर पहने और एक बड़ा सा बर्छा हाथ में लिये ऊँचे घोड़े पर चढ़ा हुआ जा रहा है। वह योद्धा सर से पैर तक

लोहे के जिरह्-बख्तर से ढका हुआ था, और उसके जिरह्-बख्तर पर एक काला वस्त्र पड़ा हुआ था। केवल उसकी सफेद नीली दो आँखें आवरण-रहित थी। उसकी उन्नत आकृति और घोड़े के चलाने के अपूर्व कौशल से वीरता प्रदर्शित होती थी। सेनापति उस अभिनन्दनीय वीर का परिचय पाने के लिये उत्सुक होने पर भी कुछ जान न सके। उधर वीर राफेय रोमन लोगो से घोर युद्ध कर रहे थे। खालेद फुर्ती से युद्ध-क्षेत्र में पहुंच गया।

सब से पहले उस अज्ञात-कुल योद्धा ने रोमन सेना पर आक्रमण किया। उसके भयंकर आक्रमण से शत्रु-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। क्षण भर में वह नर-रक्त में वर्छे को डुबोकर व्यूह को चीरता हुआ वाहर आया। उसके उस समय के भाव और कार्य से विषाद-भाव प्रकट हो रहा था। तदनन्तर वह फुर्ती से रोमन सेना में प्रवेशकर अदृश्य हो गया। वह बर्छे से सैकड़ों वीरों को ज़मीन पर गिराने लगा। राफेय ने उस अपरिचित योद्धा के आक्रमण की भीषणता और अस्त्र चलाने की कुशलता देखकर उसे ही खालेद समझा।

उस समय खालेद की सेना प्रचण्ड वेग से आक्रमण करके रोमन सेना के दाँत खट्टे कर रही थी। एक योद्धा खालेद की सेना के साथ रोमन सेना के वीच से चला आया। खालेद ने उसे अपने पास बुलाया, किन्तु वह स्थिर भाव से खड़ा रहा। तब खालेद ने ही उसके पास जाकर देखा कि उसके जिरह

बख्तर और ढाल खून से लथपथ हो रहे हैं। फिर भी जिरह-बख्तर के कटे हुए भाग से उसकी रमणीय देह का गुलाबी सौन्दर्य बाहर दिखलाई पड़ रहा है। जब खालेद ने उसका परिचय प्राप्त करने के लिए विशेष आग्रह किया तो वह बोला—"हे अमीर, मैं स्त्री हूँ। लज्जा के कारण आपके पास नहीं आती थी। मुझे क्षमा कीजिये। मैं जेरार की बहिन खावला हूँ। मैंने भाई के वीर गति प्राप्त होने के के बाद शोक में लाज-हया छोड़ दी है।" विस्मय और हर्ष से खालेद का शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

इसके बाद खालेद ने सारी सेना के साथ प्रबल वेग से शत्रु की सेना पर आक्रमण किया। खावला सबके आगे जाकर अस्त्र चलाते हुए अपने भाई की तलाश में फिर रही थी, किन्तु उसे कहीं देख नहीं पाती थी। खावला का उन्मत्त-प्राय रण-चण्डी का भाव देखकर और उसका विषाद-गान सुनकर अरब के योद्धा अश्रुगद्गद् हो उठे और फिर अत्यन्त क्रुद्ध हो भीषण गति से संग्राम करने लगे।

दोपहर से सन्ध्या समय तक युद्ध होने पर दोनों दल विश्राम करने के लिए अपने स्थान को चले गये। जेरार का कहीं पता न चला। अन्त में मालूम हुआ कि रोमन सेनापति पुत्र की हत्या करनेवाले जेरार को पकड़ कर हेमस ले जा रहा है।

राफेय कुछ सैनिकों के साथ जेरार का उद्धार करने के लिए

भेजा गया। खावला भी सेनापति का आदेश लेकर उस सैन्य-दल के साथ गई। तब रोमन लोग जेरार को लेकर सलामव नामक स्थान में पहुंचे, तो खावला उन पर टूट पड़ी। रांफेय ने भी सैनिकों के साथ आक्रमण किया। चण भर में सारे रोमन सैनिकों के मारे जाने पर खावला ने जेरार को बन्धन-मुक्त करके उसका अभिवन्दन किया और 'मरहबा' कहकर उसका स्वागत किया।

एक वार की बात है कि सहुरार के युद्ध में अरब स्त्रियाँ वन्दिनी हुई थीं। उस समय मुसलमान सेना-नायक दमिश्क छोड़कर अजनादिन में रोमन सेना पर आक्रमण करने के लिये भिन्न भिन्न दलों में विभक्त होकर चल रही थीं। वृद्ध सेनापति आबूउबेदा सारी स्त्रियों, बालक-बालिकाओं एवं और लूटे हुए धन-संपत्ति द्रव्यादि को लेकर धीरे-धीरे सबके पीछे जा रहे थे। रास्ते में दमिश्क के पीटर और पाल नामक दो वीर भाइयों ने क़िले से बाहर हो अपनी सेना के साथ उनपर आक्रमण किया। पाल तो युद्ध करने लगा और पीटर ने स्त्रियों पर आक्रमण करके लूटे हुए द्रव्य को अपने हाथ मे कर लिया और उन स्त्रियों को क़ैद करके दमिश्क की ओर अग्रसर होता हुआ डखियाक नदी के किनारे कुछ देर तक प्रतीक्षा में ठहर गया।

पीटर डखियाक के किनारे जिन स्त्रियों को क़ैद करके लाया उनमें से बहुत सी स्त्रियाँ युद्ध-विशारद थीं। वीरांगना खावला

उनको सम्बोधन करके कहने लगी—"अरब की वीर माताओ, वीरांगनाओ और वीर कन्याओ ! तुम लोगों का अपना बल और अनन्त ख्यातिप्राप्त वंश-मर्य्यादा का उज्वल गौरव क्या आज चिरकाल के लिये कलंक-कालिमा में डूब जायगा ? क्या इससे मृत्यु अच्छी नहीं है ? बहनो और माताओ ! संसार और जीवन कभी स्थायी नहीं। परलोक की याद करो। जीवन के मोह से आज हीनता स्वीकार करने पर भी, कल ही तुम्हारा अत्यन्त प्यारा जीवन पाप से कलंकित, रोग से कातर और शोक से विषरण हो जायगा। पर ईश्वर ऊपर से हम लोगों की दुर्दशा देख रहे हैं। वे अनाथो के नाथ हैं, हम लोगों का उद्धार करेंगे।

वीर बाला के वाक्यों से आग बरस रही थी और उसके मुख-मण्डल पर अपूर्व ज्योति विराज रही थी। खावला की जोशीली बातो से सब के हृदय में एक तूफ़ान सा उठने लगा। ओफिया वज्र गम्भीर स्वर में बोली, "वीर भगिनी ! हम लोग साहस-रहित नहीं हुई हैं, न युद्ध-कौशल ही भूल बैठी हैं और न हम लोगो ने बल-पौरुष ही गवाँ दिया है, किन्तु हठात् अस्त्र और वाहन-हीन अवस्था में वन्दिनी हो जाने से किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही हैं। इस समय मर्यादा और मान की रक्षा का उपाय कौन सा है, बहन ?"

खावला बिजली की तरह चमककर एक बड़ी सी लाठी हाथ

में लेकर बोली—"इच्छा करने पर तुम लोग भी इसी प्रकार आत्म-सम्मान की रक्षा कर सकती हो।" यह कहकर खावला अग्रसर होने लगी। उसके पीछे ओफिया, कुमारी उम्मेवान आदि स्त्रियाँ भी एक एक दण्ड हाथ में लेकर व्यूह बनाकर खड़ी हो गईं। खावला फिर गम्भीर स्वर में बोली—"खबरदार! तुम लोग अपना अपना सम्मान त्याग न करना, एक दूसरे से अलग होने पर रोमन लोगों की तलवार का शिकार होना पड़ेगा।

इसके बाद खावला ने आगे बढ़कर दण्डाघात से एक रोमन वीर का मस्तक चूर्ण कर डाला। अब तो रोमन सेना विस्मित नेत्रों से अरब रमणियों का अपूर्व रण-वेश देखकर अवाक् हो गई। पीटर ने झुंझलाकर सैनिकों को आदेश दिया—"अस्त्र छोड़े बिना इनका व्यूह तोड़ दो।" रोमन सैनिकों ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया, किन्तु उनके पास जाने की किसी की हिम्मत न हुई। जो कोई पास जाता, उसे वे भैरवी मूर्तियाँ दण्ड-प्रहार से ज़मीन पर सुला देतीं। इस प्रकार जब तीस अश्वारोही सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए तो पीटर स्वयं उनसे हथियार रखने की प्रार्थना करने लगा। किन्तु खावला ने घृणा के साथ उसके प्रस्ताव का तिरस्कार किया। तब पीटर ग़ुस्से से आक्रमण करने के लिये आदेश प्रदान कर बोला—"अभागे! आज तक तो अरब के वीर पुरुषों ने तुम लोगों को

पराजित किया है, आज उनकी स्त्रियाँ भी तुम लोगों को पराजित कर रही हैं। कायरो, धिक्कार है तुम लोगों को !"

रोमन लोगो ने पीटर की घृणा-भरी वातो से लज्जित हो प्रवल वेग से उन पर आक्रमण किया। किन्तु वड़े-वड़े दण्डो के आघात के ऊपर रोमन लोगो के वर्छे और तलवारो के प्रहार व्यर्थ होने लगे।

उधर खालेद काल की तरह पाल की सेना का विनाश करके उसे कैदी वना करके पीटर की ओर दौड़ा। इस्लियाफ के तट पर वड़ी सेना के वीच वड़े वड़े दण्डो को चलते हुए देख कर खालेद वोला—"ये स्त्रियाँ अमालिका और तवालिया वंश की हैं। इन लोग की वीरता और इनका साहस सर्वत्र प्रख्यात है। आज यदि इन्होंने युद्ध करके अपनी लज्जा और मान-रक्षा की चेष्टा की, तो निस्सन्देह पूर्व पुरुषो के गौरव को आँच न आने पायेगी और अरव-रमणियों की वीरता से पृथ्वी चमत्कृत हो जायगी।"

इसके वाद खालेद ने पीटर की सेना मे प्रवेश करके मार-काट आरम्भ कर दी। खावला के दण्ड-प्रहार से पीटर के घोड़े की टाँग टूट गई, जिससे वह जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय जेरर ने उसकी कमर मे वर्छा घुसेड़ दिया। पीटर ज़मीन पर सदा के लिये सोगया।

इसके वाद भी कई युद्धो मे खावला ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया।

(१२) उम्मये बान

वीरांगणा 'खावला' की कहानी मे इस कुमारी का उल्लेख हो चुका है। उसके वाद अजनादिन के युद्ध के दिन, इब्न-बिन सईद के साथ, उसका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ। ये भी बड़े वीर थे। इनका युद्ध-कौशल अतुलनीय और साहस अनुपमेय था।

अरबो ने दूसरी बार जब दमिश्क पर आक्रमण किया तो दमिश्क के बादशाह का दामाद वीरवर टामस क़िले की दीवार पर बैठकर बाण छोड़ने लगा। उसके बाण विष-बुझे थे। उन्हीं विप-बुझे बाणों से उम्मयेबान का पति इब्नबिन सईद ज़ख्मी हुआ। सहसा उनका उग्र विष सारे शरीर में फैल गया। थोड़ी ही देर मे उस का प्राण पखेरू उड़ गया, देह-पिजर शिविर मे ख़ाली पड़ा रहा।

जब उम्मयेबान को पति के वीर गति प्राप्त होने का समाचार मिला तो वह दौड़ी हुई उसी शिविर में पहुँची और स्वामी के पैरो तले बैठकर, धीर गम्भीर स्वर मे, कहने लगी—"प्राणेश्वर, जिस परमात्मा के अनुपम कौशल से हम लोग संसार मे जन्म लेते हैं और पुनः यहाँ से बिदा होते हैं, उसी सृष्टि-कर्ता के समीप उप-स्थित होते हैं। अब उस परमात्मा के स्वर्ग में सुख से विचरण करो। तुम से मेरी जुदाई हुई है सही, पर मेरा यह अतृप्त हृदय तुम्हारे प्रति सदा अनुरागी रहेगा। मैं भी परमेश्वर द्वारा नियुक्त इसी कर्म-क्षेत्र में अपना शरीर त्याग कर तुम्हारी संगिनी हूँगी।"

उस समय उसके दोनों नेत्रों से एक बूँद भी आँसू न गिरा। उस समय भी उसके सिर से इत्र की सुवास आ रही थी, हाथो की मेहदी का रंग फीका न हुआ था। उम्मयेवान स्वामी के बग़ल में और अधिक देर तक न बैठ सकी। उसने चुपके से जाकर तल-वार और ढाल ली और सेनापति का आदेश लिये बिना ही सर-हाबिल की सेना पर यकायक टूटकर मारकाट आरम्भ कर दी। वह बाण चलाने में भी एक ही थी।

टामस के सामने एक आदमी एक बड़ा 'क्रूस' लेकर उच्च स्वर से जय की प्रार्थना कर रहा था। उम्मयेवान ने निशाना ताक कर ऐसा बाण चलाया कि वह उसकी छाती के उस पार हो गया। क्रूस उसके हाथ से गिरकर दीवार के पास गिर पड़ा। उस चमकते हुए हीरे नीलम से जड़े हुए क्रूस को मुसलमानो ने अपने हाथ मे किया।

जब प्रधान 'क्रूस' अरबवालो के हाथ में चला गया तो टामस बहुत भयभीत हुआ। वह तेज़धार वाली तलवार लेकर और सख़्त ज़िरह बख़्तर पहनकर दौड़ा और चिल्लाकर बोला—"जिस जिसकी इच्छा हो, वह मेरे पीछे दौड़ आवे। अरबों को समूल नष्ट कर क्रूस लिये बिना हम लोगों का निस्तार नही।" टामस अपनी वीरता और पराक्रम के लिये प्रख्यात था। अतः रोमन लोग उत्साहित होकर पीछे दौड़े।

रोमन लोग द्वार खोलकर भूखे बाघ की तरह अरब लोगों पर

टूट पड़े। अरबों ने भी उन्मत्त सिंह की तरह आक्रमण कर दिया। टामस मुसलमानो के व्यूह को चीरकर पागल की तरह क्रूस को ढूँढ़ रहा था। टामस को पागल की तरह देखकर उम्म-येवान ने बगलवाले सैनिको से पूछा—"प्राणों की मोहमाया से रहित यह पागल कौन है ?"

वे बोले—"यही आप के स्वामी का हत्याकारी टामस है।"

इतना सुनना था कि वह वीरांगणा धनुष में बाण लगा-कर बिजली की तरह टामस की ओर दौड़ी। रोमन सिपाही चारो ओर से गरजते हुए उसकी ओर बढ़े। उसने उनकी ओर भ्रूक्षेप तक न किया। उसने कान तक प्रत्यंचा खींचकर बाण छोड़ा। टामस क्रूस लेने ही को था कि इतने मे उम्मयेवान का वह तीक्ष्ण बाण उसकी दाहिनी आँख में घुस गया। टामस चिल्लाता हुआ पीछे को हटा। सैनिक उसे ढालों से घेरकर पीछे को भाग खड़े हुए। उम्मयेवान ने एक और व्यक्ति को दो तीरों से विद्धकर रोमन सेना को विचलित कर दिया। अरब लोगों ने रोमनो को मारते पीटते किले के दरवाजे तक उन्हे भगा दिया। तीन सौ रोमन वीरों के शव से किले का दरवाज़ा पट गया।

जब टामस किले में प्रवेश कर निरापद हुआ तो बड़े-बड़े सूरमा और बहादुर मिलकर बहुत चेष्टा करने पर भी उसकी आँख से बाण न निकाल सके। इसके बाद बाण का वहाँ तक का भाग काट दिया गया, जहां तक काठ था और आहत स्थान को बाँध

दिया गया। लेकिन उस लोहे के फलक के आँख मे रहने से तीव्र वेदना कम न हुई। प्रधान प्रधान व्यक्ति बोले—"हम लोग अरब वालों की वीरता को जानकर पहले ही सन्धि करने के लिये कहते थे।"

टामस बोला—"तुम लोगो की इसी कायरता के कारण ही क्रूस शत्रुओं के हाथ मे चला गया, और मेरी आँख भी नष्ट हुई। मैं क्रूस का उद्धार कर एक आँख के बदले हजारों आँखे नष्ट करूँगा।"

क्रोध के आवेश मे उसने उसी क्षण योद्धाओ को आक्रमण करने का आदेश दिया।

दिन के तीसरे पहर तक युद्ध हुआ। टामस ने रात में सोते हुए अरबों पर आक्रमण कर दिया।

टामस के दुर्ग से बाहर होने के समय घण्टा-ध्वनि और दुर्गद्वार के खोलने के कर्कश शब्द से मुसलमान योद्धा अस्त्र लेकर अभी तैयार भी न हुए थे कि रोमन लोगों ने उन पर आक्रमण कर दिया। गभीर अंधकार में भीषण युद्ध होने लगा। केवल तलवार और बर्छे चमक रहे थे।

क्रूस को अपहरण करनेवाले वीरवर सरहाबिल के साथ टामस द्वन्द्व युद्ध करके लड़ने लगा। उम्मयेबान सरहाबिल के निकट खड़ी होकर छिपकर बाण छोड़ रही थी। उसके बाण जिसके शरीर में विद्ध होते थे, वह वहीं जमीन पर गिर पड़ता था। रोमन

सिपाही उम्मयेवान को पुरुष समझ रहे थे। जब वाण छोड़ते छोड़ते उसका तरकस ख़ाली हो गया और केवल एक वाण रह गया तो रोमन लोगों ने उस पर आक्रमण किया। उसने हाथ के अन्तिम वाण को भी शत्रु पर चला दिया। वह वाण उसकी छाती मे घुस गया। वह भीषण चीत्कार करके ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर न उठा। किन्तु उम्मयेवान निरस्त्र होकर वन्दिनी हुई। इसी मौके पर वीरवर अवदुर्रहमान और इब्नबिन उस्मान फुर्ती से वहां पहुँच गये और उम्मयेवान को छुड़ाकर टामस पर टूट पड़े। जब टामस ने देखा कि मुसलमान नयी सेना के आ जाने से और भी वली हो गये हैं तो वह किले मे भाग गया।

उस रात को वहुत से रोमन सिपाही मारे गये। वल और साहस के नष्ट होने पर फिर उन लोगो ने लड़ने का साहस न किया। दूसरे दिन आत्म-समर्पण कर अरव लोगों के साथ सन्धि करके वे दूसरे देश को चले गये। इस प्रकार महावली खालेद ने दमिश्क जीता। एक दूसरे संग्राम मे खालेद के हाथ से टामस की मृत्यु हो गई।

उम्मयेवान का शेष जीवन इसी प्रकार युद्ध करते वीता। खावला और उम्मयेवान का जीवन सार्थक हो गया। इन लोगों ने समस्त अरव की रमणियो का मुख उज्ज्वल किया है। आज भी अरव की लड़कियो से लेकर वृद्धाये तक भक्ति और सम्मान-पूर्वक खावला और उम्मयेवान का नाम लिया करती हैं।

(१३) तानाजी

शिवाजी की माता रायगढ़ किले के ऊपर चढ़कर चारों तरफ दृष्टि डाल रही थी। सहसा उनके मन में यह विचार आया कि यद्यपि बड़े-बड़े किले शिवाजी ने जीत लिये हैं, तथापि एक प्रधान दुर्ग सिंहगढ़ अब भी मुगलों के अधिकार में है। वे नीचे उतर आईं और शिवाजी से बोलीं—"शिवा, आओ, चौसर खेला जाय।"

चौसर बिछा दिया गया। दोनों खेलने लगे। भला शिवाजी कब यह चाहते थे कि मेरी माता मुझ से हार जाय। हार उन्हीं की हुई। वह बोले—मां, मैं हार गया। बोलो, क्या चाहती हो।

जीजाबाई बोली—"मैं एक किला चाहती हूँ।"

शिवा जी बोले—"कौनसा किला चाहती हो?"

जीजाबाई बोली—"मैं ऐसा वैसा किला नहीं चाहती। मुझे सिंहगढ़ दो।"

सिंहगढ़ का नाम सुनते ही छत्रपति शिवाजी का मुँह पीला पड़ गया।" वह बोले—"मां, तुम्हारी माँग बहुत बड़ी है, ऐसा दुर्भेद्य किला सह्याद्रि पर कहीं नहीं है। इस पर उदय भानुसिंह की राजपूत सेना उसकी रक्षा कर रही है। वह किला हमारे अधि-कार में किस प्रकार आ सकता है?"

जीजाबाई प्यार की झिड़की देकर बोली—"मैं और कुछ नहीं जानती। मुझे यह दुर्ग अवश्य चाहिये।"

कुछ देर तक शिवाजी विचार करके बोले—"अच्छा, यही होगा। मैं कुछ आवश्यक कार्य्यों मे फँसा हूँ। अतः मैं स्वय न जाकर अपने सर्वश्रेष्ठ सेनापति को इस कठिन कार्य के लिए भेजता हूँ। वह लौटकर आयेगा या नही, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

माँ ने कहा—"डरो मत बेटा, मां भवानी उसे विजय प्रदान करेगी।"

शिवाजी ने एक दूत बुलाया और उसके द्वारा कहला दिया कि माता की इच्छा की पूर्ति का भार तानाजी पर ही है।

राजाज्ञा लेकर जब वह दूत तानाजी के पास पहुँचा उस समय तानाजी अपने पुत्र की शादी की तैयारी कर रहा था। लगातार युद्धो में व्यस्त रहने पर उसने आज ही छुट्टी पायी है। वह पुत्र की शादी के राग-रंग में चित्त को आनन्दित करने के मनसूबे बाँध रहा है। इतने में ही फिर युद्ध की बात ! सो भी ऐसा-वैसा युद्ध नही, सिंहगढ़ किले को अधिकार में करना ! वीर हृदय भी काँप उठा !

फिर भी वे, क्षणभर की भी देर न कर, शिवाजी के पास पहुँचे। उनके सामने सिर नवाकर बोले—"महाराज, बहुत बुरे

समय में आपने दास को याद किया है। लड़के के विवाह की सारी सामग्री तैयार है।"

शिवाजी उदास होकर बोले—"भाई, इस बार मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है—तुम्हारी माता ने बुलाया है।"

जीजा बाई भी वहीं पर थीं। वे बोलीं—"तानाजी, तुम मेरे छोटे पुत्र हो। माता के आशीर्वाद से तुम और भी गौरव के पात्र बनो। तुम्हारे जैसे वीर के रहते हुए भी आज महाराष्ट्र पर यवनों का अधिकार बना हुआ है!"

तानाजी हाथ जोड़कर बोले—"माँ, मेरी एक प्रार्थना है कि यदि, दुर्भाग्य से, यही संग्राम मेरा अन्तिम संग्राम हो, तो बालक रामबा को अपने चरणों में स्थान दीजियेगा।"

राजाज्ञा से तानाजी हज़ार सिपाहियों को प्रेमपूर्वक भोजन कराया गया और प्रत्येक को एक एक पोशाक और कुछ धन दिया गया। उस समय उन्होंने प्रसन्न मन से युद्ध-यात्रा की। तानाजी के साथ उसका ८० वर्ष का बुड्ढा मामा शेलार और छोटा भाई सूर्य्या भी चले।

रात में क़िले के पास सिपाहियों को छिपाकर तानाजी एक किसान का वेष धारण कर क़िले के दरवाजे पर उपस्थित हुए और सन्तरियों से बोले, "भाई, मैं किसान हूँ। खज़ाना देने को पूना गया था। जब लौटकर आ रहा था, तो रात के अंधेरे में रास्ता भूल

गया। अगर कृपा करके आप लोग रात में ठहरने न देंगे तो इस ग़रीब को बाघ वग़ैरह मारकर खा जाँयगे।"

यह कहकर उसने अपने छोटी सी पोटली में से कुछ अच्छी अच्छी मिठाइयां सिपाहियों के सामने धर दीं। उदयभानु ने उन्हें ताकीद कर दी थी कि रात में किसी को भी किसी भी परिस्थिति में स्थान न देना। किन्तु मिठाइयों को देखकर सिपाहियों की जीभ में पानी भर आया। उसे रहने को आज्ञा मिल गई। वह क़िले के सम्बन्ध में आवश्यक ख़बरें लेकर किसी बहाने से वहाँ से भाग आया। उसकी मिठाइयों में नशीली चीज़ें मिली हुई थीं, संतरी खाने के थोड़ी ही देर बाद बेख़बर सो गये।

किन्तु सिंहगढ़ की ऊँची और चिकनी दीवार को लाँघना बड़ा ही कठिन कार्य था। ताना जी के पास एक सिखाई हुई कमन्द थी। वह अनायास ऊँची से भी ऊँची दीवार पर चढ़कर उसमें इस प्रकार चिपक जाती थी कि उसे छुड़ाना कठिन हो जाता था। उसकी कमर में एक रस्सी बांध दी गई और उसे दीवार पर चढ़ा दिया गया। मराठे वीर उसी रस्सी को पकड़कर चढ़ने लगे।

यही मराठे वीर पहले डाकू थे। परन्तु शिवाजी ने उन्हें सैनिक बना दिया था। इसी से रात के आक्रमण में वे विशेष पटु थे। रात में आक्रमण करने के अतिरिक्त दुर्ग को अधिकृत में करने का और कोई उपाय ही न था।

तानाजी के साथ के तीन सौ योद्धा ज्योंही गढ़ के ऊपर चढ़ गये त्योंही बीच ही में रस्सी टूट गयी और क़िले की रक्षा करनेवाले सैनिको को भी पता चल गया। उन्होंने तानाजी पर आक्रमण कर दिया। राजपूत और मराठे वीर उसी अँधेरे मे एक दूसरे को गाजर-मूली की तरह काटने लगे। राजपूत सैनिक संख्या मे मराठे सैनिको से बहुत अधिक थे। फिर मराठे सिपाहियो की फुर्ती और तलवार चलाने की कुशलता देखकर वे दंग रहे। देखते ही देखते बहुत से राजपूत सिपाही खेत रहे। इधर मराठे सिपाही तो संख्या में थोड़े थे ही। वे भी कम रह गये। परन्तु तानाजी ने उन्हे उत्साहित करके युद्ध जारी रखने के लिये कहा। मराठे सैनिक जान पर खेलने लगे। इतने मे मराठा वीर तानाजी तलवार से आहत हो जमीन पर गिर पड़ा। वृद्ध शेलार भी उस युद्ध में युवकोचित वीरता-प्रदर्शन करके वीरगति को प्राप्त हुआ। उदयभानु ने भी उनका अनुसरण किया।

इधर मौक़ा पाकर तानाजी के छोटे भाई सूर्याजी ने बाक़ी सिपाहियों को लेकर दुर्ग में प्रवेश किया। नयी सेना के आ जाने पर राजपूत सिपाहियों की हिम्मत टूट गयी। किले पर मराठों का अधिकार हो गया।

जिस समय इस किले के अधिकार में आने की खबर छत्रपति शिवाजी के पास पहुँची, उस समय उनकी आँखें डबडबा

आईं। वाष्परुद्ध कण्ठ से वह कहने लगे—"गढ़ तो आया, परन्तु सिंह चला गया।"

जीजाबाई बोली—"बेटा, आज हम लोगो ने जिस रत्न को गँवाया, उसके समान कोई न मिलेगा। किन्तु अब शोक करने से काम न चलेगा। मैं अपने पुत्र की अन्तिम इच्छा पूर्ण करूँगी। तानाजी ने रामवा की शादी की तैयारी की थी। चलो, उसकी क्रिया हो जाने पर यह विवाह-कार्य हम लोग सम्पन्न करें।"

तानाजी पुत्र के विवाहोत्सव को तो न देख सके, किन्तु इतिहास में अपना नाम अमर कर गये, इसमे कोई सन्देह नहीं। वीरो के बलिदान से ही जातियाँ अपना मस्तक उन्नत करती हैं। आज महाराष्ट्र-साम्राज्य नहीं है, पर तानाजी जैसे महाराष्ट्रो ने महाराष्ट्र जाति को अमर बना दिया है।

---

(१४) स्वदेशाभिमानी रोमन

रोम साम्राज्य का नाम आप मे से बहुतो ने सुना होगा। यदि यह कहा जाय कि दो हज़ार वर्ष पहले रोम पृथ्वी का एक मात्र श्रेष्ठ राज्य था तो अत्युक्ति न होगी। उस समय अमेरिका लोगों को मालूम न था। अफ्रिका का अधिकांश हिंस्र जन्तुओं के समान बर्ब्बर जाति का निवास-स्थान

था। वर्तमान समय में अँगरेज़, फ्रेञ्च, जर्मन आदि सभ्य जातियाँ जिन देशों में निवास करती हैं, वे सभी देश उस समय रोम साम्राज्य के अधीन थे। दस्युओं के समान रोमन लोग किस प्रकार साधारण स्थिति से संसार में वीर जाति वाले हो गये, अपनी छोटी सी नगरी को संसार में सर्वश्रेष्ठ नगर बनाया और फिर किस अवस्था मे रोम उन्नति के उच्च शिखर से दुर्दशा की निम्नतम खाई मे पतित हो गया, इतिहास मे इसका सविस्तर वर्णन मिलता है।

यहाँ केवल एक बात लिखते है। वह बात यह है। रोम साम्राज्य की वह अनुपम समृद्धि और ऐश्वर्य्य की भित्ति अनेक वीर सन्तानो की अस्थिओ और बहुत से उच्च हृदयो के रक्त पर डाली गई थी। अँगरेज़ी में एक कहावत है, जिसका अर्थ है कि रोम एक दिन मे नही निर्माण हुआ था। जब कोई सहिष्णुता और अध्यवसाय की बात चलाता है, तो वह रोम का दृष्टान्त देता है। रोम की प्रबल शक्ति और अतुलनीय ऐश्वर्य तिल तिल कर के बहुत वर्षों और युगों मे संचित हुआ था। कितने ही मनस्वी रोमन लोगो ने मातृभूमि के कल्याण और गौरव के लिये अपने सुख, अपने स्वार्थ और अपने जीवन तक को हँसते हँसते समर्पित कर दिया था। इसी से रोम महत् हुआ था, इन्हीं कीर्त्तियों के कारण रोम का नाम इस समय संसार भर मे आदर के साथ लिया जाता है। कोई जाति, देश व समाज, उस जाति,

देश व समाज के प्रत्येक व्यक्ति के स्वार्थ-त्याग से ही उन्नत होता है। समाज के जब बहुत से लोग अपने थोड़े से सुख तथा स्वार्थ को भूल कर देश के लिये, सत्य के लिये अपने को अर्पित कर देते हैं, तब वह जाति तथा समाज उन्नत होता है, यह ईश्वर का अलंघ्य नियम है। किसी महात्मा ने कहा है कि जिस प्रकार एक छोटे से बीज को खेत में बो देने पर उससे सैकड़ों अन्न के दाने पैदा होते हैं, वैसेही एक जीवन के नष्ट होने पर उससे सैकड़ों जीवन जग उठते है। सभी देशों के इतिहास मे इसके उज्ज्वल प्रमाण पाये जाते हैं।

आज हम जिस समय की कथा कहते हैं, वह रोम के अभ्युदय-काल के प्रथम युग की है। इटली के बाहर पैर रखने पर रोम एक प्रबल शत्रु से संघर्ष में आता है। वह शत्रु कार्थेज है। कार्थेज आफ्रिका देश मे, भूमध्य सागर के उपकूल पर अवस्थित है। कार्थेज की सभ्यता रोम की अपेक्षा भी प्राचीन है। रोम के अभ्युत्थान के बहुत पहिले कार्थेज काफी समृद्धशाली हुआ था। वाणिज्य और नौविद्या में वह तत्कालीन सभी जातियों में अग्रणी था। रोम के अभ्युत्थान का अवश्यम्भावी फल हुआ—इन दोनों जातियो का संघर्ष। दो जातियाँ परस्पर प्रेमपूर्वक रहेगी, इसकी उस समय बिल्कुल सम्भावना न थी। उनमें से एक का अनवत होकर आवश्यक था। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि कार्थेज रहेगा व रोम? शतवर्षव्यापी संग्राम मे इस

प्रश्न का निपटारा हुआ। दोनों जातियों ने प्राणपण से संग्राम किया था, किन्तु रोम की नई शक्ति के सम्मुख कार्थेजवासी न ठहर सके। कार्थेज को नीचा देखना पड़ा। रोम विजयी हुआ, किन्तु इसके लिए बहुत से रोमन लोगों को अपने हृदय का रक्त बहाना पड़ा।

युद्ध के आरम्भ होने पर कुछ ही दिनो के बाद मैनिलियस और रेगुलेस नामक दो सेनापतियो को कार्थेज के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा गया। रोम की सेना ने इसके पहले समुद्र-पार, दूर देश की यात्रा नहीं की थी। वे लोग कार्थेज जाने से बहुत डरने लगे। विशेष कर उस समय में तो कार्थेज का नाम सुनकर लोग बहुत ही डरते थे। उनका विश्वास था कि वहाँ बड़े बड़े राक्षस, साँप, हाथी और सिह हैं। वे मनुष्य को पाते ही खा जाते है। यह बात कुछ अंशों में ठीक भी थी। योरप में न तो हाथी था, न सिंह, न साँप। कार्थेज में भी जानवर भरे हुए थे रोमन लोगों ने पहले हाथी नहीं देखा था। कार्थेजवासी हाथी पर चढ़कर युद्ध करते थे। पहले पहल, रोमन सैनिक हाथी देखते ही रण-क्षेत्र छोड़कर भाग खड़े होते थे। रेगुलस बहुत भय दिखाकर, बहुत आश्वासन देकर, सैनिको को कार्थेज ले चला। रास्ते में भूमध्य सागर के कार्थेज के लड़ाकू जहाज़ से उनका एक संग्राम हुआ, जिसमें रोमन ही विजयी हुए।

रेगुलस ने कार्थेज पहुँचकर उपयुक्त स्थान देखकर वहाँ अपना

शिविर डाला और वहीं से सुविधानुसार शत्रु का देश लूटने लगा। इतने में रोम से यह आदेश आया कि मैनिलियस को शीघ्र ही स्वदेश भेज दो। इस आदेश को पाकर रेगुलस अत्यन्त दुखी हुआ। तब उसी पर सारी सेना का भार पड़ा। लेकिन उसे भी घर लौटना आवश्यक हुआ।

रेगुलस नितान्त दरिद्र था। रोम के इतिहास के आरम्भिक काल में देखा जाता है कि उस समय के अधिकांश विख्यात सेनापति तथा राजनीति-विशारद अत्यन्त दरिद्र थे। वे अपने हाथ से ज़मीन जोत कर अपने परिवार का पालन करते थे। स्वदेश के लिए काम करने पर हल फेंककर युद्ध-यात्रा करते थे। रेगुलेस के पास कुल मिलाकर ३०० बीघा जमीन थी। उसके देशवासियों ने कार्थेज के विरुद्ध लड़ने जाने के लिये उसे आह्वान किया तो वह एक आदमी को अपनी अनुपस्थिति मे, जमीन जोतकर उसके परिवार के पालन-पोषण का भार दे आया था। किन्तु वह आदमी विश्वासघात करके उस का हल बैल आदि लेकर भाग गया। रेगुलस की स्त्री और बच्चे अन्नाभाव से कष्ट पाने लगे। इस सम्वाद को पाकर रेगुलस चिन्तित हुआ। जो हो, रोम के मन्त्रि-मण्डल ने उसके परिवार के पालन-पोषण का भार लिया। रेगुलस अत्यन्त दक्षता और साहस के साथ युद्ध करने लगा। बार-बार पराजित होकर कार्थेज वासियो ने अन्त मे सन्धि का प्रस्ताव भेजा। किन्तु

रेगुलस बड़ा ही विकट मनुष्य था। वह ऐसी बातो मे आने-वाला न था। उसने कहला भेजा, "मै सन्धि की बात नहीं समझता यदि तुम लोगो मे शक्ति हो तो मुझे जीत लो, नहीं तो आत्म-समर्पण करो।"

तब कार्थेजवासी निरुपाय होकर अपने देवता की पूजा करने लगे। वे 'मोलक' नाम के एक भयंकर देवता की पूजा किया करते थे। इस देवता के निकट वे अपनी-अपनी सन्तान को बलि देते थे। इस विपत्ति के समय कार्थेज के प्रधान-प्रधान व्यक्तियों में से प्रत्येक अपनी एक-एक शिशु सन्तान को मोलक के निकट बलि देने लगा। अन्ध विश्वास से मुग्ध होकर मनुष्य कितना भयानक कार्य कर बैठता है। जो हो, कार्थेजवासी केवल अपने देवता को सन्तान की बलि देकर ही निश्चिंत नहीं हुए, रोमन लोगो के साथ संग्राम करने के लिए, उन्होंने विदेश से सैन्य संग्रहार्थ आदमी भी भेजे।

उस समय ग्रीस देशवासी स्पार्टन साहस और रणकुशलता के लिए बहुत प्रख्यात थे। कार्थेजवासियों को अर्थ का अभाव न था, वे बहुत सा धन व्यय कर बहुत से ग्रीक योद्धाओं को लाये थे। उनमें जैन्थियस नामक एक योद्धा था, जो बहुत ही साहसी और बुद्धिमान था। कार्थेजवासियों ने उसे अपना सेनापति बनाया। उसके कौशल से कार्थेजवासियों ने युद्ध में जय प्राप्त किया। एक भयानक युद्ध में रोमन पराजित हुए और उनका सैनाध्यक्ष रेगुलस

शत्रुओं के हाथ में बन्दी हुआ। इस युद्ध में जितने लोग बन्दी हुए उनमें से बहुत लोगों को कार्थेजवासियों ने 'मोलक' के निकट बलिदान किया। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से, रेगुलस को बलि नहीं दिया गया। उसे क़ैद करके नाना प्रकार से उत्पीड़न किया जाने लगा। उधर जिस प्रकार पहले युद्ध हो रहा था, वैसे ही जारी रहा। रोमन किसी तरह से युद्ध में हारकर पीठ दिखाने वाले आदमी न थे। फिर नयी सेना और सेनापति आये। रुपये ख़र्च कर विदेश से भाड़े पर, सेना लाकर, भला कितने दिन तक युद्ध चल सकता है? जो स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं, उनका पतन अवश्यम्भावी है। युद्ध के बाद युद्ध में कार्थेजवासी पराजित होने लगे। दो वर्ष के बाद उन्होंने फिर निरुपाय हो कर सन्धि की प्रार्थना की। इस बार उन लोगों ने सन्धि स्थापित करने के लिए रेगुलस को रोम भेजने का इरादा किया। उन लोगों ने यह सोचा कि रोमन लोग रेगुलस में देवता की सी भक्ति रखते हैं, अगर वह कहेगा तो रोमन लोग निश्चय ही सन्धि करने को राजी हो जाँयगे। इन दो वर्षों में कार्थेजवासियों ने उसे नाना प्रकार से उत्पीड़ित करके यातना दी। शारीरिक कष्ट, मार-पीट की यातना और मानसिक वेदना से वह बिल्कुल श्रीहीन-विवर्ण हो गया था। कार्थेजवासियों ने उसे कारागार से बाहर लाकर कहा, "तुम हमारे दूत के साथ रोम जाओ, यदि तुम अपने देशवासियों से कहकर सन्धि करा दोगे तो तुम्हे मुक्त

कर दिया जायगा, किन्तु यदि ऐसा न कर सकोगे तो तुम्हें फिर वापस आना पड़ेगा और घोर यातना देकर तुम्हारी जान ली जायगी।" विदा होने से पहले उन लोगों ने रेगुलस को शपथ दिलाई कि सन्धि का प्रस्ताव यदि ग्राह्य न होगा तो वह कार्थेज-अवश्य ही लौट आवेगा।

वह बन्दी वीर बहुत दिनों के बाद जीर्णशीर्ण और मलिन देह लेकर अपने देश को लौटा। किन्तु उसने रोम के नगर मे प्रवेश करने से साफ इन्कार कर दिया। वह बोला—"मैं इस समय रोमन नहीं हूँ, मै वर्वर कार्थेजवासियो का दास हूँ, मै अपने घृणित पाद-स्पर्श से रोम नगरी को कलंकित नहीं करना चाहता।" उस की प्यारी अर्द्धांगिनी अपने दो बच्चों को लेकर व्याकुल होकर उसके पास पहुंची, किन्तु उसने मुँह उठाकर उनके तरफ देखा तक नहीं। वह कार्थेज का बन्दी था, फिर भला किस प्रकार रोमन महिला का पति और रोमन वालक का पिता कहलाता? जब रेगुलस किसी तरह से रोम शहर में प्रवेश करने को राजी न हुआ तो रोम का मन्त्रिमण्डल अन्त में शहर के बाहर आकर उससे मिला। कार्थेज के दूत ने सन्धि का प्रस्ताव किया। सेनेट ने रेगुलस की राय पूछी। उसने उन्हें सन्धि की शर्तों को अस्वीकार कर युद्ध जारी रखने के लिये परामर्श दिया। वह बोला, "मैंने अपनी आँखों से कार्थेज की दुर्दशा देखी है, कार्थेज के पतन होने में अव और विलम्ब नहीं है। वे अधिक दिन तक

युद्ध जारी रखने में समर्थ न होगे। इस समय सन्धि करने से कार्थेजवासी बिल्कुल लाभ मे रहेंगे; रोम को इससे कोई लाभ न होगा। मै वृद्ध हो गया हूँ, शत्रु के अत्याचार और मानसिक यन्त्रणा से मेरा यह शरीर भग्नप्राय हो गया है। मेरे उद्धार के लिए तुम कुछ भी चेष्टा न करना। मैं यह जानता हूँ कि लौट कर जाने पर कार्थेजवासी मुझे घोर यातना देकर मार डालेंगे, किन्तु मै मृत्यु से नहीं डरता। अपनी जन्म-भूमि के लिए जो कल्याण-प्रद है, वही परामर्श मैं दे रहा हूँ। इसमें मुझे यातना मिलें अथवा प्राण ही क्यो न चला जाय, पर उसकी मै जरा भी परवा नहीं करता।"

केवल दूत ही नहीं, रोमन लोग तक उसके अपूर्व आत्म-त्याग को देख कर अवाक् हो गये। वे दल के दल आकर रेगुलस को कार्थेज लौट कर न जाने के लिये परामर्श देने लगे। रोम का प्रधान पुरोहित आकर बोला—"तुम्हे जबर्दस्ती शपथ दिलाकर यहाँ लाया गया है। उस शपथ को न मानने से तुम्हे पाप न होगा।" किन्तु रेगुलस का वीर हृदय उस बात से न डिगा। वह उस अयोग्य प्रस्ताव की घृणा के साथ, उपेक्षा करके कार्थेज लौटा। वह बोला—"क्या तुम लोग मुझे कलंकित करना चाहते हो? मै जानता हूँ कि कार्थेज मे भयानक यातना और मृत्यु मेरी प्रतीक्षा कर रही है, किन्तु निन्दनीय आचरण-जनित लज्जा और अपराधी मन की पीड़ा के सम्मुख वह वेदना कुछ भी नहीं है।

यद्यपि मैं कार्थेज का दास हो गया हूँ, किन्तु मै रोम की शिक्षा नही भूल सका हूँ। मैं कार्थेजवासियो के यहाँ लौट जाने की प्रतिज्ञा करके आया हूँ। वहाँ लौट जाना मेरा कर्त्तव्य है। उसके वाद क्या होगा, मुझे मालूम नहीं, यह भगवान के हाथ में है।"

रोमन वीर अपनी मृत्यु की फाँसी, अपने गले में निर्भयता के साथ पहनकर, शत्रु के देश को लौट आया। कहा जाता है कि रेगुलस जव कार्थेज लौटा, तो कार्थेजवासियों ने उसकी आँखे निकलवाकर उसे गर्म वालू में डाल दिया। पर्व्वत पर से गिरा कर और वर्छे से छेद-छेदकर उसे मार डाला।

आज न तो वह रोम ही रहा और न कार्थेज ही, रोम का वह ऐश्वर्य भी न रहा ! कार्थेज का चिह्न तक काल-स्रोत में नष्ट हो गया किन्तु रेगुलस की अमर कीर्ति अव भी देश-देशान्तर में प्रतिध्वनित हो रही है।

---

(१५) केवल कर्तव्य के लिए

शरद्‌ऋतु की रात्रि थी, नर्मदा नदी का तट। उस समय तथा उस स्थान की अनुपम स्वर्गीय शोभा साक्षात् रुद्र को भी शान्त करने मे समर्थ थी। वह हरा-भरा तरुलताओं से घिरा हुआ प्रदेश शरद्‌ऋतु की चांदनी में और भी श्री-सपन्न हो रहा था। मधुर गन्ध-युक्त मन्दानिल के झोंके से नर्मदा के स्वच्छ सलिल प्रवाह मे असंख्य तरंगे पैदा हो रही थीं और आकाश मे फैले हुए तारागण उस जल में प्रतिविम्बित हो हो मानो विहार कर रहे थे। वह नर्मदा नदी का तट उस समय बहुत ही शान्त, रम्य तथा आनन्दमय प्रतीत होता था। एक युवक जल-प्रवाह के बिल्कुल पास ही इस नैसर्गिक सौन्दर्य को अवलोकन करते हुए एक शिला पर बैठा था। उसके सुन्दर तथा तेजस्वी मुख-मण्डल पर आशा; उत्साह तथा प्रफुल्लता की छटा एक ही साथ दिखाई पड़ती थी। वह युवक मराठा वीर था। वह आजकल के युवकों की तरह वाक्शूर न था, बल्कि अस्त्रधारी कर्त्तव्य-शूर था। उसके कमर मे तलवार लटक रही थी।

प्रसिद्ध मराठा वीर बाजीराव पेशवा अपनी विशाल सेना के साथ इस समय नर्मदा तीर पर उपर्युक्त स्थान से कुछ ही दूर पर डेरा डाले पड़े थे। हमारा नवयुवक भी उसकी सेना का एक छोटा सा पदाधिकारी था। बाजीराव अपने अनुचरों पर सदा

ध्यान रखते थे। सच्चे गुणियो के वह बड़े पारखी थे। उचित प्रोत्साहन द्वारा सद्गुणो का आदर करना भी वह .खूब जानते थे। यही कारण था कि यह मराठा वीर इस समय बाजीराव का कृपापात्र हो रहा था।

वह युवक इस समय भावी युद्ध में अपनी स्वामि-निष्ठा, कौशल और शूरता से अपने स्वामी को आकृष्ट करने की बात सोच रहा था। तब तक इसी विचार में निमग्न होने के कारण प्रकृति की अनुपम छटा के अवलोकन करने का उसे अवकाश ही नही मिला था। परन्तु जिस समय वह अपने मन मे कुछ विचार निश्चित कर, प्रफुल्लचित्त से, अपने निवास स्थान की ओर जाने लगा, उस समय प्रकृति-सुन्दरी ने शीघ्र ही अपनी अनुपमा छटा से उसे मुग्ध कर लिया। वह आगे कदम न रख सका—एक शिला-खण्ड पर बैठकर, उत्साह-पूर्ण दृष्टि से, चारो ओर ध्यान-पूर्वक देखने लगा।

सहसा किसी अबला का करुणक्रन्दन उसे सुनाई पड़ा। युवक चौंक पड़ा, "एँ, रोना! और वह भी ऐसे समय! निष्ठुर काल, क्या तूने किसी रमणी को चिर विरह की आग में तो नहीं ढकेल दिया है?" यही विचार कुछ क्षणो के लिये उसके मन मे लहराने लगा परन्तु चट उसके ध्यान मे आया कि किसी अत्याचारी के हाथ मे पड़ी हुई असमर्थ, असहाय कोई पतिव्रता रमणी तो नहीं है?" यह बात ध्यान में आते ही उसने कमर में लटकती हुई

तलवार को हाथ मे लिया। उसके मुखमण्डल पर आनन्द-छटा के स्थान पर ललाई दौड़ गई। जिस ओर से वह करुणध्वनि आ रही थी, वह उसी ओर बढ़ने लगा। बड़े-बड़े वृक्षो, घनी लताओ तथा काँटेदार झाड़ियों से होकर वह अग्रसर होने लगा।

हवा के झोके से काँपती हुई लता के समान भय में काँपती हुई एक बालिका एक वृक्ष के आधार पर खड़ी थी। उसके सामने सैनिक पोशाक पहने एक पठान खड़ा होकर "मेरी जान" इत्यादि वाक्यों से सम्बोधित कर उसे अपने पंजे मे करने का प्रयत्न कर रहा था और सादी पोशाकवाले तीन सैनिक दूर ही से यह तमाशा देख रहे थे। युवक ने यह दृश्य देखते ही कड़कती हुई आवाज मे कहा—"ऐ नीच नराधम ! एक अबला पर अत्याचार—और वह भी ऐसी असहाय अवस्था मे !" यु वक के गम्भीर शब्द सुनकर खाँ साहब के सिपाही सहमकर चुपचाप खड़े रहे। खुद खाँ साहब भी चौककर कुछ पग पीछे हटे। उन्होने देखा कि हाथ मे नंगी तलवार लिये युद्ध के लिये ललकारता हुआ एक छोकड़ा सामने खड़ा है। उस विशालकाय पूर्णयौवनावस्था-प्राप्त हट्टे-कट्टे पठान के सामने हमारा युवक शरीर तथा आयु मे सचमुच ही बालक था।

अपनी काली दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए युवक की ओर सस्मित दृष्टि से देखकर खाँ साहब बोले—"अरे, तू तो दस वर्ष का बच्चा है। हट जा, नही तो मुर्गी की तरह तुझे हलाल कर

डालूँगा।" इस समय बालिका तथा पठान के बीच में खड़ा होकर युवक ने दृढ़ता के साथ कहा, "ऐ मूर्ख, यदि शक्ति हो तो तलवार निकाल।" यह कहकर वह तलवार लेकर उसकी ओर झपटा। परन्तु उस नीच को भी तलवार निकालने का मौका मिल गया।

हथियारों की खनखनाहट और उनकी प्रतिध्वनि से वह शान्त एकान्त प्रदेश शीघ्र ही निनादित हो उठा, उन वीरों की गर्जना तथा शस्त्रों की कर्कश ध्वनि से पक्षीगण भयभीत होकर इधर उधर भागने लगे। दोनो ही युद्ध कला में समान थे। खाँ साहब का ख्याल था कि इस बच्चे को, यों हीं, बात की बात में, गिरा दूंगा; किन्तु उससे भिड़ते ही उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई और उन्हें भी पूरी शक्ति से शस्त्र चलाने को मजबूर होना पड़ा। इस समय प्रत्येक क्षण युवक के लिए अमूल्य था। "ये तीनों सैनिक अपने स्वामी की सहायता के लिये चले न आवें और फिर मेरा दर्प तथा उस अबला का सतीत्व कहीं नष्ट न हो जाय"—ऐसा विचार उसके हृदय में उठना स्वाभाविक था। अपनी सारी शक्ति लगा कर पूरे हस्त-कौशल के साथ तलवार के एक ही वार से उस दोजखी कुत्ते को जहन्नुम पहुंचाने के सिवा दूसरा कोई रास्ता उसके लिए न बचा था। किन्तु शत्रु भी कोई ऐसा-वैसा आदमी न था। युद्ध-कौशल में वह और युवक समान ही थे। हाँ शरीर के आकार और बल में

साथ ही अनुभव मे खाँ साहब बढ़े-चढ़े थे। किन्तु कर्तव्य के लिए जान को हथेली पर रख कर लड़ने वाले युवक ने अपनी पूरी शक्ति से शत्रु पर एक प्रहार किया। तलवार के लगते ही उस पठान के शिर तथा हाथ, धड़ से अलग होकर गेंद के समान हवा मे उड़ कर उस बालिका के चरणों के पास ही आ गिरे। जो सैनिक लोहे के खम्भे की तरह स्थिर थे वे भूखे बाघ की तरह उस युवक पर टूट पड़े। अपने से प्रबल प्रति-स्पर्द्धी पर भारी वार करने के कारण उस युवक की सारी शक्ति खर्च हो गयी। और इसी से उसकी दृढ़-मुष्टिका ढीली पड़ गयी थी। उसे फिर दृढ़ करने में केवल एक क्षण भर की आवश्यकता थी। किन्तु इतना भी अवकाश न मिला, तीनों ओर से दुश्मनों से घिर जाने से वह युवक कुछ बुरी स्थिति में पड़ गया। परन्तु वह वीर था। उसके सिर पर एक अबला के सतीत्व की रक्षा का भार था। ऐसी परिस्थिति में विपत्ति का सोच करने से क्या लाभ था। दो ओर के दो शत्रुओ को तो-उसने अपने हस्त-कौशल से परास्तकर उन्हे कुछ पग पीछे हटा दिया; किन्तु पीछे से तीसरे सैनिक के शस्त्र से उसकी दाहिनी भुजा पर एक गहरा घाव हो गया। तलवार के एक ही वार से इस प्रतिस्पर्द्धी का बायाँ हाथ उसने जड़ से उड़ा दिया, परन्तु दुर्दैव से इसी समय पहले सैनिक ने उसके पैर पर भयंकर वार किया। युवक की बाँह तथा जाँघ से रक्त-फव्वारे छूटने लगे। उसका हाथ कुछ ढीला

पड़ गया है, ऐसा उस बालिका को जान पड़ा। बालिका ने अब अपनी आत्म-रक्षा की आशा को छोड़ दिया। इस समय उसके शरीर मे अपूर्व वीरता का संचार हुआ। उसने पैरो के पास ही पठान सैनिक के हाथ से गिरी हुई तलवार को उठा लिया। युवक पर पीछे से आक्रमण करनेवाले सैनिक ने अपनी सारी शक्ति के साथ उस युवक पर पुनः आक्रमण किया और चाहा कि उसका सिर धड़ से अलग कर दें। परन्तु बालिका ने इसी समय विद्युद्वेग से उस नराधम को यमलोक पहुंचा दिया। हाय ! स्त्री हृदय कितनी देर उस भयानक दृश्य को देख सकता था। तत्काल ही बालिका का कोमल हृदय उस दृश्य को देखकर विदीर्ण हो गया और वह पृथ्वी पर निशःक्त होकर बैठ गई। उसकी क्षणिक वीरता जाती रही और स्वाभाविक भीरुता ने उस पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु शस्त्राघात तथा रक्तस्राव से नि'शक्त उस युवक को अब भी दो यमदूतों से सामना करना था। युवक का अन्तिम उपाय यही था कि अपनी सारी शक्ति तथा कौशल एकत्र कर, एक ही प्रहार मे, काम तमाम कर दे। इसी उपाय का उसने उस समय भी फिर अवलम्बन किया और अपने दोनों शत्रुओं को, एक समय, एक ही प्रहार से मिट्टी मे मिला दिया। पर हाय ! क्या केवल वे ही दो मिट्टी में मिल गये ? नहीं अकेले ही चार प्रबल शत्रुओ से लड़ने तथा शरीर का बहुत सा रक्त बह जाने के कारण वह युवक अत्यन्त निःशक्त

हो गया था। ऐसे समय मे वह अन्तिम प्रहार करनेवाला कोई मानवी युवक नहीं था। मानो प्रत्यक्ष वीरता ही शरीर धारण कर ही लड़ रही थी। श्रम की अधिकता से वह युवक अपने प्रतिस्पर्धियो के साथ ही भूमि पर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा। इस समय उस अभागिनी वालिका के हृदय की क्या अवस्था हुई होगी— इसका सहज ही अनुमान हो सकता है। एक भयंकर चीत्कार कर वह दौड़कर उस युवक के पास आई और मुर्दे की तरह पड़े हुए वीर के समीप वैठकर जोर से रुदन करने लगी। दूसरे ही क्षण वह नमर्दा के पवित्र प्रवाह की ओर कर गई। अपने आँचल पानी मे भिगोकर वह फिर उस युवक के पास दौड़ आई और उसे निचोड़कर और उसका जल उसके मुँह में डाला तथा उसके शिर पर जल छिड़का। अपने पहने हुए वस्त्रो को फाड़ कर उनकी पट्टियो से जख्मो को किसी प्रकार वांधा तथा उसका मस्तक अपनी गोद मे रखकर उसके वाँह के जख्म पर पट्टी वाँधी। उसके मुँह में फिर जल निचोड़कर आँचल से उसके मुख पर हवा करते हुए तथा वार-वार युवक के निस्तेज मुखमण्डल को निहारते हुए वह वालिका हृदय-विदारक रुदन करने लगी। कुछ काल के अनन्तर युवक ने ज़रा मस्तक हिलाया। श्वासोच्छ्वास स्पष्ट होने लगा। धीरे धीरे उसने नेत्र खोले तथा ऊपर देखने लगा—"क्या शत्रु भाग गये?" "नहीं दादा! वे सब धूल फाँक रहे हैं।"— वालिका ने उन प्रेतो की ओर तुच्छ दृष्टि से देखकर उत्तर दिया।

परन्तु फिर भी उसका गला भर आया। रोनी आवाज से उसने कहा—"आपने इस अभागिनी के लिये इतना कष्ट क्यो उठाया? हे ईश्वर! क्या तुमने मुझ अभागिनी को इसी लिए उत्पन्न किया था? हे प्रियबन्धु! तुमने इस अनाथ भगिनीके लिए अपने प्राणों को सङ्कट में डाला। युवक को अब पूरी चेतनता प्राप्त हो गई थी। उसके शिर पर हाथ फेरकर बालिकाने कहा, "केवल मेरे ही लिये ...."। "नहीं नहीं, प्रिय भगिनी, केवल कर्तव्य के लिये" आसन्नमरण युवक ने सिंह-गर्जना करके कहा—"**केवल कर्तव्य के लिये!**"

"हाँ, हाँ, केवल कर्तव्य के लिये—हे वीरपुत्र—केवल कर्तव्य के लिये!"—सामने की घनी झाड़ी मे से अत्यन्त गम्भीर शब्द निकले और तत्काल ही एक भव्य राजमूर्ति उस बालिका के सामने आ खड़ी हुई। रात्रि के शान्त तथा आह्लादकारक समय में, नर्मदा तट पर एकान्त मे भ्रमण करते हुए, बाजीराव ने बालिका की करुणक्रन्दन-ध्वनि सुनी और क्या मामला है—यह जानने की इच्छा से ढूँढ़ते हुए वे घटनास्थल पर आ पहुंचे। बालिका ने रुलाई रोककर उठने का प्रयत्न किया; किन्तु वह युवक का शिर पृथ्वी पर रखने में असमर्थ हुई।

"बेटी! बैठी रहो!"—कह कर उन्होने अपना राज-चिह्नाङ्कित शिरोभूषण उतारकर उस युवक के शिर के नीचे रख दिया। अपने कमर में लपेटे हुए वस्त्र को वे नर्मदा-जल से

भिगोकर ले आये। "केवल कर्तव्य के लिये"—यह शब्द गम्भोर वाणी से उच्चारण कर उन्होंने उस मूर्च्छित युवक के मुँह तथा शिर पर पानी डाला। अपने हाथो से बाजीराव ने युवक के घावों को पुनः धोकर अपने वहुमूल्य उत्तरीय की पट्टियों से बाँधा और वे उसके मुख की ओर चिन्ताकुल दृष्टि से देखते हुए बैठे रहे। युवक ने फिर नेत्र खोलकर उस बालिका तथा बाजी राव की ओर देखा। उसके चेहरे पर उसी मधुर मुस्कान की रेखा पुनः एक बार झलक पड़ी, जो कुछ देर पहले शिला-खण्ड पर बैठने के समय उसके प्रशान्त मुखमण्डल पर दिखलाई पड़ रही थी।

"केवल कर्तव्य के लिये! बेटा, तुमने आज अपनी मानव देह को सार्थक किया है" कहते हुए पेशवा के नेत्रों से प्रेमाश्रु टपककर युवक की देह पर गिर पड़े। तत्क्षण वीर युवक ने 'राम' 'राम' कहकर केवल कर्तव्य के लिये, प्राण छोड़ दिये!

---

(१६) प्रतिद्वन्द्वी

युद्ध समप्त हो गया है। जर्मनो ने फ्रान्स पर अधिकार कर लिया है। सारा देश मानो विजयी शत्रु के पैरों तले सोया हुआ है और अवसन्न पड़े हुए पहलवान की तरह दीर्घश्वास छोड़ रहा है।

बहुत दिनों के भूख-प्यास से व्याकुल, निराश नगरवासी आज पहले दिन ट्रेन द्वारा पेरिस नगरी से सीमान्त प्रदेश को जा रहे थे। रेलगाड़ी मन्द गति से गाँवो और नगरों से होती हुई जा रही थी। रेल मे सवार लोग खिड़की से देखते जा रहे है। हरे-भरे अनाज के खेत शत्रु की सेना से कुचल डाले गये हैं। गाँव के गाँव जल कर खाक हो गये हैं। जो दो-चार झोपड़े जहाँ तहाँ बच गये हैं, उनके दरवाजे के बाहर कुर्सी पर बैठकर कोई-कोई प्रशियन सैनिक धूम्रपान कर रहे हैं, कोई-कोई झोपड़ी के सामने घोड़े की पीठ पर टहल रहे हैं। कोई कोई सैनिक परिवार के आत्मीय की तरह घर के धन्धे में फँसे हैं, अथवा हँसी-मजाक करते हुए घूम रहे हैं।

मोशिये डूब्रिये, नगर के घेरे के समय, पेरिस में, 'जातीय रक्षक दल' में सम्मिलित थे। उन्होंने एक बुद्धिमान की तरह, शत्रु के चढ़ाई करने से पहले ही, स्त्री और बाल-बच्चों को

स्विट्ज़रलैण्ड भेज दिया था। बहुत दिनो के बाद आज वह उनसे भेंट कर के लिए रेल से जा रहे थे।

दुर्भिक्ष, अनशन और नाना प्रकार के कष्टो के बीच होते हुए भी ऐश्वर्यशाली शान्ति-प्रिय बनिये की विशेषता-सा प्रकट करने वाला मोशिये डूबिये के बड़े पेट का विस्तार किसी प्रकार कम नहीं हुआ था। गत वर्ष की भीषण घटनावाली उनके नेत्रों के सामने घटित हो रही थी। उन्होने मनुष्य के प्रति मनुष्य का पशु जैसा निष्ठुर व्यवहार अपने नेत्रो देखा है। करुण अनुकम्पा से हृदय के द्रवीभूत होने पर भी डूबिये ने चुपचाप सब सहन किया ह और किसी तरह का असन्तोष भी नहीं प्रकट किया है। युद्ध के अन्त मे सीमान्त प्रदेश को जाने के समय यह पहली बार उन्होने प्रशियन सेना देखी। दुर्ग की चहार-दीवारी में रहकर जिस समय फरासीसी सिपाही नगर की रक्षा कर रहे थे, उस समय डूबिये भी वहाँ थे, किन्तु कोई प्रुशियन सैनिक उनके नेत्रों के सम्मुख नही आया था।

हाथ मे हथियार लिये दाढ़ीवाले शत्रु के सैनिक की ओर देखते ही, उनके हृदय में आतंक और क्रोध के भाव का संचार हुआ वे समूचे फ्रान्स राज्य भर मे इस तरह फैले हुए थे, मानो यह उन्ही का देश हो। यह सोचते ही डूबिये के हृदय मे छिपा हुआ स्वदेशानुराग जागृत हो उठा। उसी कमरे में दो अंग्रेज सवार भी थे। वे भी तमाशा देखने के अभिप्राय से फ्रान्स आये थे।

दोनों बलिष्ठ और स्थूलकाय थे। वे अपने देश की भाषा में बातचीत कर रहे थे। बीच-बीच में 'रेलवे गाइड' किताब लेकर स्टेशन के नाम ज़ोर से कहता जा रहा था।

सहसा ट्रेन एक छोटे से स्टेशन पर ठहर गयी। एक प्रशियन कर्मचारी झपाटे के साथ ट्रेन में सवार हुआ; उसके कमर में लटकती हुई तलवार झम झम शब्द करती हुई बज उठी। वह आदमी दीर्घकाय था, और फौजी पोशाक पहने हुए था। उसके चेहरे में बाल अधिक थे। उसके बाल लाल थे, मानों उनमे सदा आग लगी हुई रहती है।

अंगरेज सवारो ने मीठी मुस्कराहट छोड़ते हुए नवागतकत के प्रति कौतूहल भरी दृष्टि डाली। मोशिये डूविये ने अखबार पढ़ने का भान किया। पुलिस कर्मचारी को देखकर चोर जिस प्रकार सशंकित हो जाता है, वह भी उसी तरह गाड़ी के एक कोने में बैठे रहे।

गाड़ी छूट चली। अँगरेज़ भिन्न-भिन्न युद्ध-स्थल देखकर, उसके सम्बन्ध में नाना प्रकार के मन्तव्य प्रकट करने लगे। आलोचना के समय एक ने अँगुली के इशारे से एक गाँव दिखलाया, प्रशियन सैनिक कर्मचारी ने दोनों पैरो को फैलाकर फ्रेञ्च भाषा में कहा—"इस गाँव में हम लोगों ने बारह फरासीसियों को मार डाला है और सौ से अधिक लोगों को बन्दी कर लिया है।"

एक अँगरेज़ने कुतूहल प्रकट करते हुए तुरन्त पूछा, "गाँव का नाम क्या है ?"

प्रशियन कर्मचारी ने कहा—"फारसब्बर्ग"। इसके बाद वह गम्भीर स्वर में बोला—"हम लोग इन फरासीसियों को पकड़कर घुमाते हैं।" यह कहकर वह अवज्ञा और उपहास सूचक हँसी के साथ मोशिये डूविये की ओर देखने लगा।

विजयी सैनिकों द्वारा अधिकृत ग्रामो और देहातों से होकर गाड़ी क्रमशः वढ़ती जा रही थी। सड़कों, खेतो, दरवाजों सभी जगह पर जर्म्मन सैनिक भरे थे। पतिंगे की तरह फ्रान्स देश भर मे वे फैले हुए थे।

फौजी कर्मचारी हाथ हिलाकर कहने लगा—"यदि मैं प्रधान सेनापति होता, तो पेरिस नगर को लूट कर घरों में आग लगवा देता। एक भी फरासीसी को जीवित न रखता। फरासीसियो का नाम पृथ्वी से लुप्त कर देता।"

अँगरेज़ सवार शिष्टता के अनुरोध से बोला—"सो तो ठीक ही होता।"

प्रशियन कर्मचारी फिर बोला—"बीस वर्षो में सारा योरप हम लोगों के अधिकार में चला आयेगा।" अब अँगरेज़ सवार चंचल हो उठे। किन्तु उन्होंने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। वह कर्मचारी हँसने लगा। फरासीसियो की हार पर वह मज़ाक करने लगा। जमीन पर पड़े हुए शत्रु को अपमानित

करने में वह ज़रा भी कुण्ठित न हुआ। आस्ट्रिया का साम्राज्य इस समय जर्मनों के हाथ में चला आया था, इसलिये उसके प्रति भी उसने अवज्ञा प्रकट की थी। सब बातों में अवज्ञा और उपेक्षा प्रकट करके वह बोला—"मंत्री विस्मार्क अपनी ज़बर्दस्त सेना लेकर एक लोहे का नगर बसायेंगे।" कहते कहते अकस्मात् उसने अपने सबूट पदयुगल को मोशिये के जंघे पर पसार दिया। डूबिये का मुखमण्डल लाल हो उठा। उन्होंने एक बार फिर-कर देखा—

अँगरेज सवारों ने ऐसा भाव दिखाया, मानों उन्होने घटना को देखा ही नहीं; मानो वे संसार के कोलाहल से बहुत दूर—अपने द्वीप में बैठे हुए हैं।

फौजी अफसर ने पाकेट से सिगार पीने का नल निकाला। फ़रासीसी सवार की ओर देखकर बोला—"तुम्हारे पास तम्बाकू है?"

मौशिये डूबिये बोले—"नहीं, महाशय।"

जर्मन बोला—"इस बार गाड़ी के ठहरने पर उतरकर मेरे लिये कुछ तम्बाकू खरीद ले आना।"

इसके बाद हँसते हँसते बोला—"मै तुम्हें शराब पीने के लिये कुछ दूँगा।"

सीटी बज उठी। ट्रेन की गति मन्द पड़ गई। इस बार

जिस स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, वह बिल्कुल जल कर खाक हो गया था।

जर्म्मन अफ़सर ने गाड़ी का दरवाजा खोलकर मोशिये डूबिये का हाथ धरकर कहा—"जाओ, जो कहा है, उसे करो। जल्दी जाओ।"

प्रशियन सैनिकों का एक दल वहीं रहता था। एंजिन से धुंआ बाहर निकल रहा था। गाड़ी छूटने ही को थी। मोशिये डूबिये झटपट प्लैटफ़ार्म पर उतर पड़े और स्टेशन मास्टर के मना करने पर भी पासवाले डब्बे में चढ़ गये।

उस डब्बे में और कोई न था! फ़ुर्ती से उन्होंने वेस्ट-कोट उतार डाला। उसकी छाती वेग से धड़क रही थी। निश्वास बन्द होने को था। उन्होंने ललाट से पसीना पोंछ डाला।

आगे एक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई। अकस्मात् वही जर्मन फौजी अफसर डुबिये के डब्बे के सामने उपस्थित हुआ; दौड़कर वह डब्बे में घुस पड़ा। मोशिये के सामनेवाले आसन पर बैठ कर उस जर्म्मन ने हँसते-हँसते कहा, "मैंने तुम्हें जो करने के लिये कहा था, उसे तुम करने के लिये राजी नहीं हो क्या ?

मोशिये बोले—"नहीं महाशय।"

उस समय गाड़ी छूट गई थी।

सैनिक अफ़सर बोला, "तो मैं तुम्हारी दाढ़ी नोचकर नल में भरूँगा।"

उसने मोशिये की ओर हाथ बढ़ा दिया।

अँगरेज़ यात्री हक्के-बक्के होकर उसकी तरफ देखने लगे।

इधर जर्मन अफसर मोशिये की दाढ़ी पकड़कर खींचने लगा। डूबिये ने उसे ढकेल कर उसका हाथ हटा दिया। इस के बाद जर्मन अफसर की गर्दन पकड़ कर उसे सीट पर गिरा दिया। क्रुद्ध फरासीसी के ललाट पर का शिरा समूह स्फीत हो उठा। दोनों नेत्रों से मानों अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा था। एक हाथ से उसने फौजी अफसर का गला पकड़ रखा था और दाहने हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसके चेहरे पर घूसे जमा रहा था। जर्मन अफसर उससे अपनी गर्दन छुड़ाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहा था। उसने तलवार को मियान से निकालने की कोशिश की, किन्तु कुछ भी फल न निकला। मोशिये अपने भारी पेट से उसे दाब कर मानों उसे पीस रहा था। वारिधारा की तरह फौजी अफसर पर मुष्टिधारा बरस रही थी। जर्मन का मुखमंडल रक्त की धारा से भर गया। उसके दांत तक टूट गये। वह हार कर मोशिये से मुक्ति पाने की प्राणपण से चेष्टा करने पर भी आत्म-रक्षा न कर सका।

अंगरेज़ यात्री उठ खड़े हुए। उस दृश्य को अच्छी तरह से देखने के उद्देश्य से उनके पास चले आये। दोनों प्रतिद्वन्दियों को बाधा न पहुँचाते हुए खड़े खड़े तमाशा देखने लगे।

मोशिये डूबिये अत्यन्त थक गये थे। अकस्मात् शत्रु को छोड़ कर बिना जबान हिलाये अपने आसन पर बैठ गये।

प्रुशियन कर्मचारी ने उस पर आक्रमण करने की फिर चेष्टा न की। उस फरासीसी के प्रचण्ड मुष्ठाघात से चोट खाकर जर्मन बहुत डर गया था। जब कुछ जान में जान आई तब वह बोला—"यदि आप पिस्तौल द्वारा मुझ से युद्ध के लिये राजी न होंगे तो मैं आपका खून करूंगा।"

डूबिये ने कहा—"मैं सदा तैयार हूँ।" आपकी जब इच्छा हो, लड़ लीजिये।

जर्म्मन बोला यह 'ट्रासवर्ग' नगर है, मैं दो फौजी कर्मचारियों को अपना सहकारी रखूँगा। गाड़ी के इस स्टेशन से छूटने के पहले ही कार्य समाप्त हो जाना चाहिये।

मोशिये डूबिये उस समय भी वेग से सांस ले रहे थे। वे अंगरेज़ यात्रियों से बोले—"क्या आप लोग मेरी सहायता करेंगे ?

दोनों एक स्वर से बोले, "अवश्य।"

गाड़ी रुकी। एक मिनट में ही प्रुशियन वीर दो जर्म्मन सैनिक पुरुषों को ढूँढ कर ले आया। उनके पास एक जोड़ा पिस्तौल था। सब लोग चहर-दीवारी की ओर चल पड़े।

अंगरेज बार बार घड़ी निकाल कर समय देखते थे। कहीं

गाड़ी छूट न जाय, इस डर से उन्होंने उपस्थित कार्य को बड़ी फुर्ती से कर डाला।

मोशिये ने अपने जीवन में कभी पिस्तौल का व्यवहार नहीं किया था। प्रतिद्वन्द्वी से बीस हाथ की दूरी पर उन्हें खड़ा होना पड़ा।

जब उनसे पूछा गया; "आप तैयार हैं?" उन्होंने उत्तर; "हाँ, महाशय।" उसी समय उन्होंने देखा, एक अंगरेज छाता खोलकर धूप से उनकी रक्षा कर रहा है।

एक आदमी बोल उठा—"गोली छोड़ो।"

मोशिये क्या कर रहे हैं, किस तरफ गोली छोड़ रहे हैं, इन सब बातों को लक्ष्य किये बिना ही यों ही गोली छोड़ने लगे। विस्मय पूर्वक उन्होंने देखा कि जर्मन अफसर घायल हो गया है, वह दोनों बाहें ऊपर उठाकर सामने जमीन पर गिर पड़ा। मोशिये की गोली ने उसका काम तमाम कर डाला।

एक अंगरेज आनन्द से अधीर होकर बोल उठा "ठीक है।" दूसरा अंगरेज यात्री उस समय भी घड़ी देख रहा था। उसने मोशिये का हाथ पकड़ कर खींच लिया और द्रुतवेग से स्टेशन की ओर चल दिया।

तीनों आदमी अगल-बगल धीरे धीरे चलते हुए स्टेशन पर पहुँचे।

उस समय गाड़ी छूट रही थी। तीनों कूद कर अपने कमरे में चढ़ गये। अंगरेज यात्री टोपी उतार कर एक स्वर से बोल उठे—"हिप हिप हुर्रे"।

इसके बाद गम्भीर भाव से दोनों ने अपना एक एक हाथ मोशिये की ओर बढ़ा दिया। हाथ मिलाकर वे अपनी अपनी जगह पर बैठ गये।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

की

प्रकाशित पुस्तकें—

१—ईश्वरीय बोध

परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, तमाम संसार में प्रसिद्ध हैं उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्णजी ने ऐसे मनोरञ्जक और सरल, सबकी समझ में आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। प्रत्येक उपदेश पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है मानो कोई कहानी पढ़ रहे हैं, छोड़ने को जी नहीं चाहता, परन्तु वही उपदेश हमारे जीवन को ईश्वर के एक हाथ और निकट पहुंचा देता है। व्यवहारिक बातों द्वारा भगवान का बोध करा देना स्वामी रामकृष्ण जी का ही कार्य था। सचमुच मनुष्य ऐसी पुस्तक पढ़कर अपने को बहु उच्च बना लेता है। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ ।।।)

२—सफलता की कुंजी

अमेरिका, जापान आदि देशों में वेदान्त का डंका पीटने वाले तथा भारत माता का मुख उज्ज्वल करने वाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्हीं स्वामी जी के Secret of

Success नामक अपूर्व लेख का अनुवाद है। यदि आप अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं और शांतिसरोवर में गोता लगाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। मूल्य ।)

३–मनुष्य जीवन की उपयोगिता

मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है? इसकी उत्तम से उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ़ जाइये। कितने सरल उपायो से पूर्ण सुखमय जीवन हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय में थी, जहां के एक चीनी ने इसका अनुवाद चीनी भाषा में किया फिर इसका योरुप में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद हुए। हिन्दी अनुवाद का तीसरा संस्करण अभी हाल ही में छपा है। डेढ़ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य केवल ॥=)

४–भारत के दशरत्न

यह जीवनियों का संग्रह है। इसमें भीष्मपितामह, श्रीकृष्ण, चौहान पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ रामदास, श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवनचरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखे गये हैं। मूल्य ।–)

५–ब्रह्मचर्य ही जीवन है

इसको पढ़कर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्यनाश से बचता ही है किन्तु पापात्मा भी निःसंशय पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल भी सिंह तथा दुरात्मा

भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियों का दास बनाकर भी जीवन लाभ नहीं कर सका है, उसे इस पुस्तक में बताये सरल नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। थोड़े ही समय में इसके पांच संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ।।।)

६—वीर राजपूत

यह उपन्यास एक ऐतिहासिक घटना को लेकर बड़े मनोरंजक ढंग से लिखा गया है। यदि राजपूताने के वीर राजपूतों के सच्चे पराक्रम और शूरवीरता की एक अपूर्व झलक आप को देखनी हैं, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि एक सच्चा, सदाचारी वीर पुरुष कैसे अपने उच्च जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है, तो उपन्यास को एक बार अवश्य पढ़ जाइये। मूल्य १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें

भारतवर्ष में औषधालयों और औषधियों की कमी नहीं, फिर भी यहां के मनुष्यों की आयु अन्य देशो की अपेक्षा सब से कम क्यों है? औषधियों का विशेष प्रचार न होते हुए भी हमारे पूर्वजों की आयु सैकड़ों वर्ष की कैसे होती थी? एक मात्र कारण यही है कि हमारे नित्य के खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों में वर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हें हम भूल गये हैं **"हम सौ वर्ष कैसे जीवें?"** को पढ़ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित

रह सकता है। हिन्दी में इस विषय की आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। मू० ।।।)

८—महात्मा टालसटाय की वैज्ञानिक कहानियां

विज्ञान की शिक्षा देने वाली तथा अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक। मूल्य ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियां

यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है, यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। इसमें अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता पूर्ण यश गाथायें पढ़ कर आपका हृदय फड़क उठेगा, नसों मे वीर रस प्रवाहित होने लगेगा, पुरुषाओं का गौरव का रक्त उबलने लगेगा। स्कूल में बालकों को इतिहास पढ़ाने में अपने पुरुषाओ की वीरतापूर्ण घटनाएं नहीं पढ़ाई जातीं, केवल विदेशी पुरुषों की प्रशंसा के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। इससे आवश्यकता है कि देश का कोई बालक ऐसे समय में इस पुस्तक के पढ़ने से न चूके। मूल्य केवल ।।)

१०—आहुतियाँ

यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक हैं। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते हैं? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ाते हैं? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ।।।)

११—जगमगाते हीरे

प्रत्येक आर्य संतान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है। यदि रहस्यमयी, मनोरंजक, दिल में गुदगुदी पैदा करने वाली महापुरुषों की जीवन-घटनाएं पढ़नी हैं—यदि छोटी छोटी बातों से ही महापुरुष बनने की ज़रा भी अभिलाषा दिल में है, तो एक बार अवश्य इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अपनी स्त्री बच्चों को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)

१२—पढ़ो और हँसो

विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोटपोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे; पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है। पुस्तक की तारीफ यह है कि पूरी मनोरंजक होते हुए भी अश्लीलता का कहीं नाम नहीं। यदि शिक्षाप्रद मनोरंजक पुस्तक पढ़नी है तो इसे अवश्य पढ़िये। मूल्य केवल ॥)

१३—कुसुम-कुञ्ज

कविवर गुरु भक्त सिंह 'भक्त' कृत कमनीय कविताओं का संग्रह है। ये कवितायें अपने ढंग की एक ही है। मूल्य।=)

१४—चारुचिन्तामणि कोष

इस पुस्तक में श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के सब ग्रन्थों से उन भागों का संग्रह किया गया है जिनका सम्बन्ध श्री रामनाम से है। संग्रहकर्ता राम के अनन्य भक्त श्री जयरामदास जी हैं। पुस्तक अपने ढङ्ग की एक ही है। मूल्य।-)

छात्रहितकारी पुस्तकालय

के

स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) प्रत्येक सज्जन ॥) पेशगी जमा कर इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। उन्हे प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर एक-चौथाई कमीशन दिया जाता है।

(२) पहिले की प्रकाशित पुस्तको का लेना अथवा न लेना ग्राहको की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु भविष्य मे प्रकाशित होनेवाली पुस्तको का लेना आवश्यक होगा। यदि सूचना पाते ही एक सप्ताह के अन्दर हमें सूचित कर देंगे तो वह पुस्तक न भेजी जायगी।

(३) जो सज्जन सूचना पाकर वी० पी० जाने पर उसे लौटा देंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से काट दिया जायगा। हमारे यहाँ अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी मिल सकेंगी। हम अपने स्थायी ग्राहकों को अन्य प्रकाशको की ५) या इससे अधिक की पुस्तकों पर फी रुपया एक आना कमीशन देते हैं। वृहत् सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग।

सस्ती साहित्य पुस्तकमाला

प्रकाशित पुस्तकें

वंकिम ग्रन्थावली—प्रथम खंड—वंकिम वावू के आनन्द मठ, लोक-रहस्य तथा देवी चौधरानी का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ५१२ मू० १)

गोरा—जगत् विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत गोरा नामक पुस्तक का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ६८८ मू० १।-)॥ सजिल्द १॥≡)

वंकिम ग्रन्थावली—द्वितीय खण्ड—वंकिम वावू के सीताराम और दुर्गेशनन्दिनी का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ४३२ मू० ॥।-)॥ सजिल्द १≡)

वंकिम ग्रन्थावली—तीसरा खण्ड—वंकिम वावू के कृष्ण कान्तेर विल, कपाल कुण्डला, और रजनी का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ४३२ मू० ॥।-)॥ सजिल्द १≡)

चण्डी चरण ग्रन्थावली—प्रथम खण्ड। अर्थात् टाम काका की कुटिया (Uncle Toms Cabin) का अविकल अनुवाद। पृष्ठ सं० ५९२ मू० १≡)॥ सजिल्द १॥)

चण्डी चरण ग्रन्थावली—दूसरा खण्ड—चण्डी चरण सेन के दीवान गंगा गोविन्द सिंह का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या २६० मू० ॥)

श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण—वालकाण्ड—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री कृत सरल हिन्दी अनुवाद सहित बड़े साइज़ का १९२ पृष्ठ का मू० ॥)

अयोध्या काण्ड—मू० १॥)

आरण्य काण्ड—मू० ॥।)

अन्य काण्ड भी छप रहे हैं।

सस्ती साहित्य पुस्तकमाला कार्यालय, बनारस सिटी।

साहित्य के अनूठे रत्न

बिहारी-सतसई सटीक टी० लाला भगवानदीन। बिहारी के सम्पूर्ण सात सौ दोहों की सरल टीका । पहला संस्करण समाप्त । द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण १।≈) सचित्र राज सं० १॥।)

२ रामचन्द्रिका सटीक—टीका० लाला भगवानदीन । दो भागों में समाप्त । प्रथम भाग (१–२० प्रकाश तक) राज-संस्करण २॥।) सजिल्द ३) द्वितीय भाग (२१-३९ प्रकाश तक) २।) सजिल्द २॥)

३ श्रीकृष्ण जन्मोत्सव—ले० देवीप्रसाद प्रीतम ।-) रा. सं. ।≡)

४ विनयपत्रिका सटीक—टीका० वियोगी हरिजी। गोस्वामी तुलसीदासजी की सर्वश्रेष्ठ रचना। मूल्य २॥) सजिल्द २॥।) बढ़िया कपड़े की जिल्द ३)

५ गुलदस्तए-बिहारी—बिहारी के दोहों पर रचे गए उर्दू शेर हिन्दी लिपि में। प्रणेता देवीप्रसाद 'प्रीतमा'। मूल्य ॥।≈) सचित्र राज संस्करण १॥)

६ कुसुम-संग्रह—ले० वंगमहिला। सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल। द्वितीयावृत्ति । मूल्य १॥) सचित्र

७ मुद्राराक्षस—ले० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी । आलोचनात्मक भूमिका तथा भरपूर टिप्पणी सहित । शुद्ध संस्करण मूल्य १)

८ भ्रमरगीत—महात्मा नन्ददास कृत। सटिप्पण मूल्य ≡)

९ भ्रमरगीत—सूरसागर के सर्वोत्कृष्ट पद, विस्तृत भूमिका सहित। सं० रामचन्द्र शुक्ल। मूल्य १) पृ० २५० के लगभग

१० अनुरागवाटिका—मौलिक भक्ति-रस-पूर्ण कवितायें । रचयिता श्री वियोगीहरि। मूल्य ।≡)

मुद्रक—रामप्रसाद वाजपेयी, कृष्ण-प्रेस, हिवेट रोड, प्रयाग।